॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥
॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः॥
तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुः

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

पण्डितराज श्रीमदनन्तराम विरचितः

तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुः

सम्पादक एवं अनुवादक-

पं० रामगोपाल शास्त्री निम्बार्कभूषण

साहित्या-धर्मशास्त्राचार्य

शिक्षामन्त्री-

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा समिति

प्रकाशक--

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ, जि० अजमेर (राज०)

वि० सं० २०६८ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०७

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

फोन नं0 : 01497 - 227831

प्रथमावृत्ति १०००

सं० २०४१

द्वितीयावृत्ति २०००

सं० २०६८, सन् २०११

आश्विन शुक्ल १५ (पूर्णिमा) श्रीशरद्पूर्णिमा

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क - मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर

दश रुपये

* श्रीसर्वेश्वरो विजयते *

निखिल महीमण्डलाचार्य चक्रचूड़ामणि सर्वतन्त्र स्वतन्त्र यतिपति दिनेश
अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य
श्री ''श्रीजी'' महाराज के

आशीर्वचन

आद्याचार्य सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित स्वाभाविक-द्वैताद्वैत सिद्धान्त का इस भूतल पर सर्वाधिक अन्यतम स्थान है। इस सिद्धान्त में किसी भी श्रुतिवचन में विरोधापत्ति उपस्थित नहीं होती। सर्वनियन्तृत्व-सर्वात्मत्व-सर्वव्यापकत्व-स्वतन्त्रसत्व-सर्वज्ञत्व-सर्वाधारत्वादि धर्मों से उन पुराण पुरुषोत्तम रसपरब्रह्म सर्वेश्वर श्रीराधामाधव में जीवात्मा का स्वाभाविक भेद सम्बन्ध है और ब्रह्मात्मकत्व-तन्निम्यत्व-तत्तन्त्रसत्व-तदधीन-स्थितिप्रवृत्तिनिमित्तकत्वादि जीवात्मा के धर्मों से यह स्वाभाविक अभेद-सम्बन्ध भी है।

'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'एकमेवा-द्वितीयम्' 'आत्मा वा इदमेकमासीत्' 'एको ह वै नारायण आसीत्' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते' 'अहं वै त्वमसि' 'नेह नानास्ति किञ्चन' 'अद्वैतं परमार्थतः' इत्यादि अभेद-परक इन श्रुति-वचनों एवं 'रसो वै सः' 'रसं ह्येवाऽयं लब्ध्वा आनन्दी भवति 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा-विपश्चिता' स 'तत्र पर्य्येति

जक्षन् क्रीड़न् रममाणः' 'स आत्मरतिः आत्मक्रीड आत्ममिथुनः' 'सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' 'नित्यो-नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनाम्' 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' 'यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि यथा पृथिव्या औषधयः सम्भवन्ति तथाऽक्षरात् सम्भवतीह-विश्वम्' 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयन्तपः' 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते' 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन श्नन्योऽभिचाक-शीति' 'ज्ञाज्ञौ द्वावजा वीशानीशौ' 'अक्षरात् परतः परः' 'प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' 'पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा' इत्यादि-बहुविध भेद-परक श्रुति-वचनों से जीवात्मा का भेद भी स्पष्ट रूपेण स्वाभाविक है।

इसी श्रुत्यवरोधी स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) सिद्धान्त का आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्क भगवान् ने उपदेश कर जगत् के भ्रान्त जीवों का कल्याण किया।

आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित उसी सिद्धान्त का पूर्वाचार्यों एवं सम्प्रदाय के मूर्द्धन्यतम मनीषियों ने विविध दार्शनिक-ग्रन्थों का प्रणयन कर प्रचुर प्रचार किया। उन्हीं पुण्य-श्लोक महाभनीषियों में विद्वद्वर श्रीअनन्तरामदेव परम प्रख्यात-महामनीषी थे, जिन्होंने अनेक उत्कृष्टतम ग्रन्थों की रचना कर श्रीनिम्बार्क-दर्शन की अनुपम सेवा की है। उन्हीं के द्वारा प्रणीत प्रस्तुत ग्रन्थ लघु कलेवरात्मक होते हुए भी गागर में सागर के समान अनुपम है। ''तत्त्व सिद्धान्त बिन्दु'' में सिन्धु रूप है। पण्डितप्रवर श्रीकिशोरीदासजी महाराज वेदान्त निधि

(श्रीवृन्दावन) की सत्प्रेरणानुसार वि० सं० १९६६ में विद्वद्वर श्रीछबीलेलालजी गोस्वामी ने इस ग्रन्थ का भाषानुवाद कर प्रकाशन कराया था, जो अब वह अप्राप्य हो गया है, दैवयोग से हमें एक प्रति अकास्मात् अभी कुछ वर्ष पूर्व ही प्राप्त हुई, जिसके सुन्दर भाषानुवाद सहित पुनः प्रकाशनार्थ पं० श्रीरामगोपालजी शास्त्री को हमने प्रेरित किया जिन्होंने बड़े परिश्रम के साथ वैदुष्यपूर्ण विस्तृत भूमिका-लेखन सहित इसका नवीन रूप से सरल-सरस भाषानुवाद कर श्रीनिम्बार्क-साहित्य की अनुकरणीय सेवा की है जो परम श्लाघनीय है। श्रीसर्वेश्वर, श्रीराधामाधव प्रभु से श्रीशास्त्रीजी के पूर्ण स्वस्थता एवं दीर्घायुष्य के लिए पुनीत कामना है।

उक्त ग्रन्थ अब विद्वत् समाज एवं भावुक भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है। विज्ञजन इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

*

उपोद्घात

ब्रह्म, जीव और अचेतन-इन तीन तत्त्वों में विश्व के सभी पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है। कुछ विचारक तत्त्वों की संख्या और भी कम करना चाहते हैं। जैसे सांख्य मतवादी प्रकृति पुरुष दो ही तत्त्वों में सब का अन्तर्भाव करते हैं। तृतीय तत्त्व की चर्चा वे करना भी नहीं चाहते। नास्तिक दर्शनों में विज्ञान व शून्यवादी एक तत्त्व में सब कुछ समेट लेना चाहते हैं किन्तु उनका वह क्षणिक विज्ञान तत्त्व अनित्य है।

विज्ञान नित्य सिद्ध करने वाले अद्वैतवाद के प्रचारक ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'' केवल एक नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व धर्म विवर्जित प्रकाश स्वरूप ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की वास्तविक सत्ता ही स्वीकार नहीं करना चाहते। उनकी दृष्टि में जीव क्या, ईश्वर की भी वास्तविक (पारमार्थिक) सत्ता नहीं है, क्योंकि वे दोनों मायोपहित एवं माया (अविद्या) के कार्य अन्तः-करणोपहित (अन्तःकरणावच्छिन्न) ही हैं। सोपाधिक वस्तु हैं। सोपधिक वस्तु की स्थिति जब तक उपाधि की सत्ता है, तभी तक रह सकती है। उपाधि की निवृत्ति होते ही उपहित वस्तु भी निवृत्त हो जाती है किन्तु ये सब कल्पनाएँ विचार विनिमय करने पर टिक नहीं सकती, अतएव विचारकों का बहुमत तत्त्वत्रय में ही है। औपाधिक वस्तुओं की स्थिति के सम्बन्ध में गीता का भी यही निर्णय है ''नान्तो न चादि र्न च सम्प्रतिष्ठा'' अतएव तत्त्वत्रय मानना प्रायः सर्व सम्मत है।

इन तीनों तत्त्वों का परस्पर कुछ सम्बन्ध भी होना ही चाहिये। उस (सम्बन्ध) के विषय में भी कोई भेद सम्बन्ध अपनाते हैं, कोई अभेद सम्बन्ध की पुष्टि करते हैं और अपने अभीष्ट मत के विपरीत भाव वाली श्रुतियों को निर्बल एवं गौण ठहराते हैं। वास्तव में वेद की सभी श्रुतियाँ समबल हैं। न कोई निर्बल है, न गौंण हैं। अपने-अपने विषयों में सभी प्रबल अबाधित एवं प्रामाणिक हैं। तदनुसार स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) सम्बन्ध ही शास्त्र सम्मत है। इसी को किसी ने औपाधिक किसी ने अचिन्त्य और किसी आचार्य ने विशेष्य-विशेषण भाव तथा किसी महानुभाव ने शुद्ध का विशेषण जोड़कर नवीनता व्यक्त की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'तत्त्व सिद्धान्त बिन्दु' में विद्वद्वर्य पण्डित श्रीअनन्तरामजी ने संक्षिप्त रूप से इसका सुन्दर विवेचन किया है।

हिन्दी टीकाकार पं० श्रीरामगोपालजी शास्त्री साहित्य-धर्म-शास्त्राचार्य ने इसकी ''तत्त्व ज्योति'' नामक हिन्दी टीका द्वारा पाठकों के लिए एक सुन्दर ज्योति अभिव्यक्त करके सभी का परम हित किया है।

आशा है, पाठक इसका पठन-मनन करके लाभ उठायेंगे।

--व्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ

दि० १२/६/१९८४

प्रवेश

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी'' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज के श्रीचरणों की अनुपम अनुकम्पा से स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन समर्थक वेदान्तकेसरी विद्वद्वरेण्य श्रीअनन्तरामदेव विरचित यह 'तत्त्व-सिद्धान्त बिन्दु' सान्वय भावार्थ बोधक 'तत्त्वज्योति' नामक टीका के साथ पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ की अत्यन्त प्राचीन, जीर्णशीर्ण एक प्रति प्रदान करके पूज्यपाद आचार्यश्री ने मुझे अनुगृहीत किया और आदेश दिया-''स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन के जिज्ञासु जनों के लिये परम उपादेय यह एक लघु ग्रन्थ रत्न है। इसका आधुनिक रीति से अनुवाद लेखन, सम्पादन व प्रकाशन द्वारा जीर्णोद्धार करना है।'' श्रद्धेय चरणों के उक्त आदेश की अनुपालना का ही यह प्रतिफल है।

मुझे प्राप्त प्रति श्रीजयकृष्णदास गुप्त द्वारा 'विद्या विलास प्रेस, बनारस' में सन् १९१३ ई० (विक्रम संवत् १९६९) में प्रथमबार मुद्रित कराई गई थी। इसके प्रकाशक वृन्दावन निवासी पण्डित श्रीकिशोरदासजी थे। यह 'श्रीसत्सम्प्रदाय ग्रन्थमाला' की संख्या २ के रूप में प्रकाशित हुई थी। इस पर वृन्दावनवासी निम्बार्कसम्प्रदायानुयायी गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजी के सुपुत्र, श्रीनिम्बार्क-लायब्रेरी के संरक्षक पण्डित श्रीछबीलेलाल गोस्वामी ने 'सान्वय भावप्रकाशिका' नाम की भाषा टीका की थी। इसकी द्वितीय प्रति पर्याप्त प्रयास करने पर भी कहीं सुलभ नहीं हुई।

ग्रन्थकार श्री अनन्तरामदेव--

'इस तत्त्वसिद्धान्त बिन्दु' नामक ग्रन्थ के लेखक वेदान्त केसरी पण्डित प्रवर आचार्य श्री अनन्तरामदेव पञ्चनद (पंजाब) देश में सहारनपुर जिला के अन्तर्गत जगाधारी ग्राम के निवासी गौड़ ब्राह्मण जातीय श्रीनारायणप्रसाद के आत्मज थे। आपका जन्म विक्रम संवत् की सप्तदश (सत्रहवीं) शताब्दी में हुआ था। परम विरक्त शिरोमणि, सर्व शास्त्र पारावारीण, हरिभक्ति परायण, पूज्यपाद श्री मत्स्वभूरामदेवाचार्यजी महाराज के द्वारे की शिष्य परम्परा में श्रीधर्मदासजी दीक्षित के आप शिष्य थे। यह निम्नलिखित पद्य से ज्ञात होता है--

धर्मं महान्तं श्रुतिसारगम्यं मुक्तोपसृप्यं पुरुषोत्तमाख्यम्।
ददन्निजेभ्यः स्वदयावशेन श्रीधर्मदासो जयति स्म देवः॥

उक्त पद्य आप द्वारा 'गुरुनति वैजयन्ती' टीका के मङ्गलाचरण में लिखा गया है।

श्रीअनन्तरामदेव की रचनाएँ--

आप वेदान्त दर्शनों के महान् प्रभावशाली विद्वान् थे। लघुवेदान्तरत्नमाला, पदार्थबोधिनी, हंसशरणागतिस्तोत्र, मुकुन्दशरणागतिस्तोत्र, द्वैताद्वैत विवरण, आचार्यपञ्चायतन, वेदान्तरत्नमाला, तत्त्वसिद्धान्तबिन्दु, पुरुषोत्तमचरणभूषण, आचार्यपरम्परास्तोत्र, गुरुनति वैजयन्ती, वैष्णवधर्ममीमांसा इन ग्रन्थों की आपने रचना की है।[2]

१-सन् १९१६ में प्रकाशित 'वेदान्तरत्नमाला' (मूल) की भूमिका के आधार पर।
२-'अ. भा. विराट् सनातन धर्म स्मारिका' (पृ.सं. २८८) द्रष्टव्य।

इनके अतिरिक्त आपका ही 'वेदान्ततत्त्व बोध' भी द्वैताद्वैत-दर्शन का एक अद्वितीय ग्रन्थ है, जो पं० श्रीअमोलकराम शास्त्री द्वारा विनिर्मित -बालबोधिनी' टीका के साथ अ० भा० श्रीनिम्बार्क महासभा, वृन्दावन के प्रधानमन्त्री के प्रयास से महाराजा श्री भूपालसिंहजी (महाराणा, उदयपुर) द्वारा संवत् १९९५ वि० में प्रकाशित कराया जा चुका है। आपकी वेदान्तरत्नमाला पर भी पं० श्रीअमोलररामजी शास्त्री के द्वारा निर्मित 'चन्द्रिका' नामक टीका उपलब्ध है।

'वेदान्ततत्त्वमाला' (संस्कृत पद्यमय) एवं 'श्रुति सिद्धान्त-रत्नाकर' (व्रजभाषामय) ये दोनों ग्रन्थ भी आपकी ही रचना है। इनका प्रकाशन हो चुका है।[1]

तत्त्व सिद्धान्त बिन्दुः--

यह 'तत्त्व-सिद्धान्त बिन्दु' भी श्री अनन्तरामदेव की एक मौलिक रचना है। इसमें केवल २५ श्लोक में आपने वेदान्त के सारार्थ का सफल रीति से निरूपण किया है। मङ्गल श्लोक में ही इस उद्देश्य का उल्लेख कर दिया है। यथा-'प्रणम्य सर्ववेदान्त-सारार्थः कथ्यते मया' इति।

प्रतिपाद्य विषय--

सभी वेदान्तों में सार रूप से तीन तत्त्वों की विवेचना की गई है-(१) भोक्ता (२) भोग्य और (३) नियन्ता। चित् (ज्ञानस्वरूप एवं ज्ञानाश्रय जीव) भोक्ता है तो अचित् (समस्त जड़ पदार्थ) उसका भोग्य (चित्) तथा भोग्य (अचित्) दोनों पदार्थों का नियन्त्रण करने

१-'वेदान्तरत्नमाला' (मूल) की भूमिका से ज्ञात ।

वाला, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जगत् का अभिन्न निमित्त व उपादान कारण श्रीसर्वेश्वर नियन्ता है। यह ही नियन्तृ तत्त्व ईश्वर, सर्वेश्वर, परब्रह्म आदि शब्दों का वाच्य है। उक्त तीनों के अतिरिक्त चौथा कोई तत्त्व नहीं है। ये तीनों तत्त्व एवं इनका परस्पर सम्बन्ध निरूपण प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है।

ग्रन्थ नाम व्युत्पत्तिः--

ग्रन्थ के नाम में तीन पद हैं--'तत्त्व', 'सिद्धान्त' और 'विन्दु' पद से वेदान्त के तीन पदार्थों का संकेत किया है-भोक्ता, भोग्य एवं 'नियन्ता'। क्रमशः चित्, अचित्, ईश्वर उक्त तीनों तत्त्वों के नामान्तर है। 'सिद्धान्त' में वादी व प्रतिवादी द्वारा सम्मत आक्षेप रहित निश्चय होता है। 'सिद्धान्तों निश्चयो यस्मिन्निति सिद्धान्तः' यह सिद्धान्त पद का अवयवार्थ है। 'राद्धांत' भी 'सिद्धान्त' का पर्याय है। 'समौ सिद्धान्त-राद्धान्तौ' यह निर्देश अमरकोश में किया है। 'बिन्दु' का अर्थ है--अवयव। यह सिद्धान्त के संक्षिप्त स्वरूप का ज्ञापक है। यहाँ कर्त्ता में औणादिक 'उ' प्रत्यय हुआ है।

''तत्त्वानां (भोक्तृ-भोग्य-नियन्तृणां चिदचिदीश्वराणां) सिद्धान्तस्य (भ्रान्ति-संशयादिहीनस्यान्तिमनिर्णयस्य) बिन्दुः (संक्षिप्ततया ज्ञापक) यो ग्रन्थः स तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुः इस व्युत्पत्ति से यह ग्रन्थ भोक्ता, भोग्य और नियन्ता इन तीनों तत्त्वों के भ्रान्ति, संशय आदि रहित अन्तिम निर्णय रूप सिद्धान्त का ज्ञान कराने वाला है।

अनुबन्ध चतुष्टय--

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय क्या है? उसका ग्रन्थ के साथ

कैसा सम्बन्ध है? किस प्रयोजन से वह लिखा गया है? इसके अध्ययन का अधिकारी कौन है?--इन प्रश्नों का समाधान ही अनुबन्ध चतुष्टय हैं।

जैसा कि 'तत्त्व सिद्धान्त-बिन्दु' इस ग्रन्थ के नाम की व्युत्पत्ति में निरूपित किया जा चुका है--'भोक्ता, भोग्य, नियन्ता-इन तीनों तत्त्वों के भ्रान्ति, संशय आदि से रहित अन्तिम निर्णय रूप सिद्धान्त तथा इनके परस्पर सम्बन्ध का प्रतिपादन करना' इसका विषय है। उक्त विषय का ग्रन्थ के साथ प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है। 'तत्त्वज्ञान होने से भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष होना' इसका प्रयोजन है। जिज्ञासु अधिकारी है।

ग्रन्थकार ने उक्त अनुबन्ध चतुष्टय का संकेत श्लोक सं. २५ में किया है, जिसका विशेष विवेचन 'तत्त्वज्योति' में कर दिया गया है।

तत्त्वत्रय--

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्व्वं प्रोक्त त्रिविधं ब्रह्ममेतत्'

(श्वेता० १/१२)

तत्त्व तीन है--१. चित् (भोक्ता) २. अचित् (भोग्य) और ३. ब्रह्म (प्रेरिता, नियन्ता)। यद्यपि तीनों के स्वरूप पृथक्-पृथक् हैं, फिर भी ब्रह्मात्मक होने से ये तीनों ब्रह्म के ही रूप हैं।

चित्पदार्थ--

'वेदान्त-कौस्तुभ' में श्री श्रीनिवासाचार्यजी ने चित्पदार्थ का स्वरूप निर्देश करते हुए इसे अचिद्वर्ग से भिन्न निरूपित किया है। वे लिखते हैं--

'अचिद्वर्गभिन्नो ज्ञानस्वरूपो ज्ञातृत्व-कर्त्तृत्वादिधर्मकोऽह-मर्थरूपों भगवदायत्त-स्थिति-प्रवृत्तिकोऽणु परिमाणकः प्रतिशरीरं भिन्नोबन्ध-मोक्षार्हश्चित्पदार्थः।'

(ब्र. सू. १/१//१-वे.को.)

जो अचिद्वर्ग से भिन्न, ज्ञानस्वरूप, ज्ञातृत्व-कर्त्तृत्व आदि धर्मवान्, अहमर्थरूप है, जिसके स्वरूप की स्थिति व प्रवृत्ति हरि के अधीन है, जो अणु परिमाण वाला है, प्रत्येक शरीर में भिन्न है, बन्धन व मोक्ष के योग्य है, वह चित्पदार्थ है।

यह चित्पदार्थ ही जीव है। इसका धर्म भूतज्ञान संकुचित है, क्योंकि वह अनादि माया से परियुक्त (परिवेष्टित) है। अघट घटना पटीयसी त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही भगवान् की अनादि माया है, जो जीव के स्वरूप का ज्ञान नहीं होने देती।

घटस्थ दीपक की प्रभा घटावरण रूप प्रतिबन्ध के कारण जिस प्रकार संकुचित रहती है और घट रूप प्रतिबन्ध की निवृत्ति होने पर उस प्रभा का प्रकाश विस्तृत हो जाता हैं। वह वेद्य हो जाती है। उसी प्रकार अनादि माया (अविद्या) उसे स्वकृत कर्मबन्धन रूप घट से आवृत्त कर देती है, अतः प्रमाण सिद्ध होते हुये भी जीव के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। सुख-दुःख आदि के हेतुभूत समस्त भोग्य पदार्थों का भोग करने के कारण वह जीव ही 'भोक्ता' भी कहा जाता है।

चित् (जीव) के भेद--

मुख्यतया जीव दो प्रकार के होते हैं-१. बद्ध और २. मुक्त अनादि कर्मवासना के कार्यभूत देव, तिर्यक् आदि अनेकविध शरीरों

में आत्मत्व व आत्मीयत्व के अभिमान से सुदृढ बंधे हुये जीव बद्ध कहे जाते हैं। ये भी मुमुक्षु तथा बुभुक्षु भेद से दो प्रकार के होते हैं। संसार के विविध दुःखों से क्लेश युक्त (पीड़ित) होकर जो विरक्त हो जाते हैं तथा इससे मुक्ति पाना चाहते हैं-वे मुमुक्षु जीव होते हैं। जो सांसारिक विविध विषय सम्बन्धी आनन्द के इच्छुक है, वे बुभुक्षु होते हैं। इनमें मुमुक्षु के दो भेद हैं-प्रथम वे जो भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष को चाहते हैं। दूसरे निज स्वरूपापत्ति रूप मुक्ति को चाहते हैं। प्राकृत सुख की कामना करने वाले बुमुक्षु जीव दो प्रकार के होते हैं। १. भाविश्रेयस्क और २. नित्य संसारी। जो भविष्य में श्रेय की इच्छा करते हैं वे भाविश्रेयस्क कहे जाते हैं। तथा जो इस लोक में बार-बार जन्म लेते हैं और मरते हैं, वे नित्य संसारी होते हैं। इस प्रकार बद्ध जीवों के चार भेद हुये।

मुक्त जीव भी दो प्रकार के होते हैं। नित्यमुक्त और मुक्त। नित्यमुक्त जीव प्रकृति के सम्बन्ध से सदा निर्मुक्त रहते हैं। इनका गर्भवास, जन्म, जरा, मरण आदि नहीं होता। प्रकृति के कार्यभूत सुख दुःख आदि का इन्हें कालत्रय में भी अनुभव नहीं होता। भगवान् के नित्य दर्शन और उनकी सेवा में तत्परता से आविर्भूत आनन्दरस का ये अनवरत साक्षात्कार करते हैं।

नित्यमुक्तों के भी दो भेद है--१. आनन्तर्य तथा २. पार्षद। भगवान् के किरीट, कटक, कुण्डल, वंशी आदि आनन्तर्य नित्यमुक्त जीव हैं। विष्वक्सेन, गरुड़ आदि पार्षद नित्यमुक्त जीव हैं।

मुक्त जीवों के भी दो प्रकार हैं। एक वे, जिनको निरतिशयानन्द रूप भगवद्भाव की प्राप्ति हो गई है दूसरे स्वस्वरूपानन्द की

प्राप्ति मात्र से ही सन्तुष्ट रहते हैं। इनमें भगवद्भावापन्न जीव भगवदिच्छा के अनुरूप निजेच्छा से भगवदवतार के समान ही अनन्त विग्रहों (शरीर) का परिग्रहण यथासमय कर लेते हैं ''स एकधा भवति, द्विधा भवति, त्रिधा भवति'' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण है।

जीवों के उल्लिखित मुख्य भेद वेदान्तरत्नमञ्जूषा के आधार पर प्रदर्शित किये हैं। ऐसे ही अन्य भी अनेक भेद होते हैं, जिनका निरूपण अधिक विस्तार के कारण यहाँ नहीं किया जा रहा है।

२. अचित्पदार्थ--

[1]यह चेतन का विजातीय पदार्थ है। इसमें ज्ञातृत्व, कर्तृत्व आदि धर्म नहीं होते अतः भोक्ता नहीं, अपितु भोग्य है।

[2]इसके तीन भेद निरूपित किये गये हैं--अप्राकृत अचेतन, प्राकृत अचेतन और काल स्वरूप अचेतन।

प्राकृत अचेतन--

मूल में अप्राकृत अचेतन का प्रथम निर्देश होते हुये भी दृष्ट से अदृष्ट की ओर ले जाने वाले मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम दृष्ट अनुभूत प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले प्राकृत अचेतन का स्वरूपनिरूपण किया जाता है।

[3]माया, प्रधान, तम, अव्यक्त आदि पदों से अभिधेय पदार्थ

१-अचेतनत्वञ्च चेतन-विजातीयत्वं ज्ञातृत्वाद्यनधिकरणत्वञ्च।
(वे. का. श्लोक ३ की वेदान्तरत्नमञ्जूषा),

२-अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्। (वे० का०)

३-मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपितत्न। (वे० का०)
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् (श्वे० ४/१०)

सुखावबोधार्थ निम्नलिखित पट्टिका द्रष्अव्य है--

प्राकृत अचेतन होता है। शुक्ल, लोहित, कृष्ण आदि भेद-जो सत्त्वादि गुणों के कहे गये है-इसी प्राकृत अचेतन में रहते हैं, [१]अतः शुक्लादि पदाभिधेय सत्त्वादि गुणत्रय का यह आश्रय है। [२]यह ही गुणत्रयाश्रयीभूत द्रव्य साम्यावस्था की स्थिति में प्रधान आदि शब्दों से कहा जाता है। इसमें अनादि जीवों के अदृष्ट के अनुसार श्रीपुरुषोत्तम की इच्छा से विक्षोभ होकर जब गुणों का वैषम्य होता है, [३]तब अव्यक्त (गुणत्रय की साम्यावस्थावाली) प्रकृति का व्यक्तीभाव हो जाता है। प्रकृति का कारणावस्था (अव्यक्त) से कार्यावस्था (व्यक्त) में आने को ही सृष्टि-क्रम कहते हैं। यह अव्यक्त का परिणाम है।[४]

[५]भूमि, जल, अग्नि आदि अष्टधा प्रकृति भगवान् श्रीकृष्ण की ही है, अतः यह ब्रह्मात्मक है। त्रिकाल में वर्तमान होने से यह अजा है। इसके स्वरूप का परिणाम होता है, विनाश नहीं होता,

---

१-शुक्लादि पदाभिधेय-सत्त्वादि गुणत्रयाश्रयत्वं प्राकृतत्वम्। अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णामिति श्रुतेः। (वे. र. मं.)

२-'अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥'' (वे. र. मं.)

३-इदमेव गुणत्रयाश्रयीभूतं द्रव्यं साम्यावस्थापन्नं सद् गुणवैषम्यं भजते, स एव कार्यव्यक्ती भावकालः। विष्णुपुराणे--
प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ॥ इति स्मृतेः॥(वे.र.मं.)

४-'तत्र गुणत्रयाश्रयं द्रव्यं प्राकृतम्, तत्त्वं नित्यं परिणामादिविकारि च।''
(वे० कौ०)

५-भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ (गीता ७/४)

अतः नित्य है।

सृष्टि काल में 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति०' (छा.६/२/३) इस संकल्पमात्र से प्रकृति में ब्रह्म की शक्ति का विक्षेप होकर सत्त्वादि गुणों का वैषम्य हो जाता है। इसे ही शक्ति विक्षेपलक्षण परिणाम कहते हैं। [1]जिस प्रकार ऊर्णनाभि (मकड़ी) अपनी शक्ति का तन्तु (जाला) के रूप विक्षेप करके उसी में वह प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही [2]ब्रह्म भी शक्ति विक्षेप द्वारा विश्व की सृष्टि (परिणति) करते इसी में प्रविष्ट हो जाता है। इसी से इसकी ब्रह्मात्मकता व नित्यता सिद्ध होती है।

'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।' (छा. ६/२/१) यह श्रुति भी सत्कार्यवाद का निरूपण करती है। कारण में कार्य की सत्ता पहले से ही होती है। तभी वह उत्पन्न (प्रकट) होता है। [3]असत् का तो भाव (होना) सम्भव ही नहीं है। गगन कुसुम की कभी उत्पत्ति नहीं होती, अतः सत् ही कार्य उत्पन्न होता है और वह कारणात्मक रहता है-यह सिद्धान्त है। इसी के अनुसार प्रकृति आदि का ब्रह्म से उत्पन्न होना अतएव ब्रह्मात्मक भी होना उचित है।

१-यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(मुण्डक १/१/८)

२- यदिदं किञ्च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'
(तै, ब्रह्म.-अनु.६)

३-नासतो विद्यते भावोनाभावो विद्यते सतः। (गी. २/१६)

[1]प्रकृति आदि जीवों के भोग्य, भोगोपकरण और भोग स्थान होते हैं। शब्दादि तथा तद्विशिष्ट द्रव्य, अन्न, पानीय आदि जीवों के भोग्य पदार्थ हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जड़ पदार्थ भोग के उपकरण (साधन) है। ब्रह्म के अन्तर्गत चतुर्दश भुवन भोग के स्थान है।

काल स्वरूप अचेतन--

[2]प्राकृत और अप्राकृत--इन दोनों से भिन्न अचेतन द्रव्य विशेष को काल कहते हैं। [3]सम्पूर्ण प्राकृत पदार्थ काल के अधीन हैं। काल ब्रह्म के अधीन है। [4]यह अखण्ड होने के कारण स्वरूप से नित्य तथा कला मुहूर्तादि औपाधिक कार्य रूप से अनित्य भी है।

१-प्रकृत्यादीनि च जीवानां भोग्यं भोगोपकरणं भोगस्थानानि। तत्र भोग्यं शब्दादिकं तद्विशिष्टद्रव्यमन्नपानादिकं च। भोगोपकरणं शरीरेन्द्रियमनोबुद्ध्यादि। भोग स्थानानि ब्रह्माण्डान्तर्गतचतुर्दश भुवनानि। (वेदान्त रत्न-मञ्जूषा)

२-अथ प्राकृताप्राकृतोभयभिन्नचेतनद्रव्यविशेषः कालो नित्यो विभुश्च। (वेदान्त कौस्तुभ ब्र. सू. १/१/१)

प्राकृताप्राकृतोभयभिन्नत्वे सत्यचेतनद्रव्यविशेषः कालशब्दवाच्यः। सच नित्यो विभुश्च। (वेदान्तरत्न मञ्जूषा)

३-'सर्वमपि प्राकृतं वस्तु कालतन्त्रम्, कालस्य सर्वनियामकत्वेऽपि परमेश्वर-नियम्यत्वमेव।' (वेदान्त कौस्तुभ ब्र. सू. १/१/१)

४-स च कालोऽखण्डत्वात् स्वरूपेण नित्यः। कार्य्यरूपेणानित्यः। तत्कार्य मौपाधिकम्। उपाधिश्च सूर्य परिभ्रमण रूपा क्रियेति विवेकः (वे.र.मं.)

सूर्य की परिभ्रमणरूप क्रिया ही काल की उपाधि है। [१]जिससे भूत, वर्तमान, भविष्य आदि का व्यवहार होता है। अतः काल परमाणु आदि से परार्द्ध पर्यन्त व्यवहार का असाधारण कारण है।

विभूति योग में 'कालः कलयतामहम्' (गी० १०/३०) कह कर क्षण, घण्टा, दिन आदि के रूप में सोपाधिक काल का निर्देश किया है। ''अहमेवाक्षयः कालः'' (गी० १०/३०) वचन से निरूपाधिक अखण्ड नित्य व व्यापक काल का निरूपण हुआ है। भगवान् स्वयं काल के भी काल हैं। लोकों का नाश करने के लिए ये काल में अपनी ही शक्ति का विक्षेप करते हैं।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः (गी. ११/३२)

यह वचन विराट् रूप दर्शन के समय स्वयं भगवान् ने अर्जुन को कहा है।

काल सबका नियामक होते हुये भी श्रीसर्वेश्वर प्रभु का नियम्य है। ''ज्ञः कालकालो गुणी सर्ववेद्यः'' यह श्रुति इसमें प्रमाण है। [२]भगवान् की लीला विभूति में तो काल की परतन्त्रता का अनुकरण (अभिनय मात्र है, पर नित्य विभूति पें तो काल के प्रभाव

१-स च भूतभविष्यवर्तमानयुगपच्चिरक्षिप्रादिव्यवहारासाधारणहेतुः, सृष्ट्यादि सहकारी च, परमाण्वादिपरार्द्धावसानव्यवहारासाधारणकारणं च।
(वेदान्त कौस्तुभः १/१/१)

२. लीला विभूतौ तु परमेश्वरस्य कालपारतन्त्र्यानुकरण मात्रमेव। नित्यविभूतौ तु न तत्प्रभावशंकाऽपि। कलामुहूर्तादिमयश्चकालो न यद्विभूतेः परिणाम हेतुरित्यादिवचनात्। (वेदान्तरत्न मञ्जूषा)

की कोई आशङ्का भी नहीं होती।

३. अप्राकृत अचेतन--

[1]प्राकृत (त्रिगुणात्मिका प्रकृति) और काल से अत्यन्त-भिन्न, प्रकृति मण्डल से भिन्न देशवर्ती, नित्यविभूति, विष्णुपद, परम व्योम, परमपद, ब्रह्मलोक आदि पदों से वाच्य, त्रिपादूर्ध्व भगवद्धाम, गोलोक, अप्राकृत अचेतन है।

[2]यह आदित्यवर्ण अर्थात् अनावरक स्वभाव वाला तथा तम (प्रधानादिपरवाच्य प्राकृत व काल) से परे है। भगवदीय अनादि संकल्प से भगवान् और नित्यमुक्तों के भोग्य रूप से अनेक प्रकार का है। इसमें भोग्य भगवद्विग्रह आदि है। भूषण, आयुध, पान, आसन, अलङ्कार, कुसुम, मणिमण्डल, वन उपवन, सरोवर आदि भोग के स्थान हैं।

नित्यधाम में ईश्वर व नित्यमुक्तों के विग्रह संस्थान भगवदीय आदि अनन्त इच्छाओं से सिद्ध है, अतः स्वाभाविक ही है। इनमें जन्मत्वादि विकार की कोई शंका नहीं, अतः निर्विकार है। जिस प्रकार उत्सव आदि के अवसर पर राजा अपने भृत्यों को पूर्व सिद्ध

१-अप्राकृतं नाम त्रिगुण प्रकृति-कालात्यन्तभिन्नमचेतनश्च प्रकृतिमण्डल भिन्न-देशवृत्ति नित्य विभूति-विष्णुपद-परमपद-ब्रह्मलोकादि पदाभिधेयम्।
(वेदान्त कौस्तुभ ब्र. सू.१/१/१)

२-तत्त्वं नाम त्रिगुणाश्रयप्रधानकानचिलक्षणं प्रकाशात्मकानावरकस्वभाव-मचेतन द्रव्यत्वम्। आदित्यवर्णं ''तमसः परस्तादित्यादि श्रुतेः, तमः शब्दाभिधेयाभ्यां प्रधान-कालाभ्यां परं विलक्षणम्। आदित्यवत्प्रकाशरूप-मित्यर्थः। (वेदान्तरत्न मञ्जूषा)

वस्त्र, भूषण आदि देते हैं उसी प्रकार बद्धमुक्तों को भी भगवत्कृपा से प्रकृति-वियोग के समय में पूर्वसिद्ध, नित्य, सर्वविकार शून्य, भगवत्सेवोपकरण रूप विग्रह (शरीर) आदि प्राप्त होते हैं। भगवान् का नित्य मङ्गलविग्रह स्वरूप सदृश अनन्त कल्याण गुणों का आश्रय है। वे गुण निरतिशय सौन्दर्य, मार्दव, लावण्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य आदि अपरिमित हैं। कालातीत होने से यहाँ काल का कोई प्रभाव नहीं होता।

[1]शुद्ध सत्त्वस्वरूप यह अप्राकृत अचेतन अजड (दिव्य) है। प्राकृत और काल-स्वरूप अचेतन जड़ (अदिव्य) है। चेतन (ब्रह्म और जीव) से भी यह भिन्न है और स्वयं ज्योति स्वरूप है।

अजड़ शब्द का प्रयोग दिव्य द्रव्य के लिये किया गया है। इसके पराक् और प्रत्यक् ये दो भेद हैं। इनमें भी पराक् दो प्रकार का है। १. धर्मज्ञान २. त्रिपादूर्ध्व (शुद्धसत्त्व)। प्रत्यक् के भी दो भेद हैं। १पर व २ अपर। पर प्रत्यक् ब्रह्म के लिये प्रयुक्त होता हैं तथा अपर प्रत्यक् जीव है। इस प्रकार अजड़ (दिव्य) द्रव्यों में त्रिपादूर्ध्व शुद्धसत्त्व ही अप्राकृत अचेतन है।

३. ब्रह्म पदार्थ--

'बृहि बृंहि वृद्धौ' इस वृद्धि अर्थ वाले 'बृहि' धातु से बृंहे-र्नोऽच्च (उ० ४/१४६) इस औणादिक सूत्र द्वारा 'मनिन्' प्रत्यय होकर 'ब्रह्म' शब्द व्युत्पन्न हुआ है। बृंहयतीति ब्रह्म। अर्थात् स्वरूप तथा बृहद् गुणों के योग से जो बृहत्तम वस्तु है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

१-अजड़चेतनं तेजः पराक् स्वयं प्रकाशकम्।
आराम भवनैः साकं शुद्धसत्त्वं निरूपमम्।। (सिद्धान्तमन्दाकिनी)

'बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म' यह श्रुति तथा-

एष प्रकृतिरव्यक्तः कर्त्ता चैव सनातनः।

परं च सर्वभूतेभ्यस्तस्माद्वृद्धतमोऽच्युतः।

बृद्धत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्म ... .'' इत्यादि स्मृति इसमें प्रमाण हैं।

उक्त योगवृत्ति से ब्रह्म का निरतशयबृहत्व और परत्व सिद्ध होता है। इसका संकोच न होने से यह देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से शून्य अर्थात् अपरिरच्छिन्न है। इस प्रकार ब्रह्म भगवत् शब्द का वाच्य पुरुषोत्तम, राधाकान्त, श्रीकृष्ण ही है। परत्व होने से ही श्रीकृष्ण की व्यूहाङ्गिता है, यहाँ 'व्यूह' शब्द अन्य अवतारों व मूर्तियों का उपलक्षक है समस्त अवतारों के आप अवतारी हैं। विश्व में अनन्त देवी देवताओं की मूर्तियाँ श्रीकृष्ण की ही मूर्तियाँ हैं क्योंकि सब नाम, कर्म, लिङ्ग, गुण, काम, धर्म और रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही हैं। ''सर्वनामा, सर्वकर्मा, सर्व लिङ्ग, सर्वगुणः, सर्वकामः, सर्वधर्मः' यह श्रुति (वेदान्तरत्न मञ्जूषा) उक्त अर्थ का प्रतिपादन करती है। नित्य विभूति और अवतार विभूति इन दोनों के अधिपति श्रीकृष्ण ही हैं अतएव 'सर्वदेव नमस्कारः केशवं गच्छति' यह शास्त्र किसी भी देवी-देवता के लिये किये गये नमस्कार को परम्परा से श्रीकृष्ण के पास पहुँचने का निर्देश करता है।

परब्रह्म श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर व सर्वज्ञ हैं। आप स्वाभाविक अचिन्त्य, अनन्त कल्याण गुणों के आश्रय हैं। सभी आत्माओं में वर्तमान गुण व शक्तियों के भी आप ही आधार हैं। स्वरूप व स्वरूप-गतगुणों से, दिव्य मङ्गल विग्रह तथा विग्रहगत सौन्दर्य, सौकुमार्य,

माधुर्य, लावण्य आदि गुणों से साधारण्य होने के कारण ब्रह्मादि से चाण्डाल पर्यन्त सभी के द्वारा वरणीय हैं। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण सभी प्राणियों के उपास्य हैं।

'उपासनीयं नितरां जनैः सदा' (वेदान्तकामधेनु)

[1]सभी जन भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना के अधिकारी है, क्योंकि भगवान् सभी प्रकार के अधिकारियों के अनुरूप उपासना के विषय हैं, अतएव यहाँ सामान्य 'जन' शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि कोई वैदिक विधि से उपासना करना चाहे तो उसमें केवल त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का ही अधिकार होगा। पौराणिक उपासना में तो तुर्थ वर्ग (शूद्र) भी अधिकारी होता है।

''अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्''

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनः तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८/६१)

इत्यादि शास्त्र वचनों से चराचर विश्व के नियन्ता श्रीकृष्ण ही है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि समस्त दोषों से स्वभावतः शून्य हैं। 'सत्यं ज्ञाननन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति द्वारा निर्दिष्ट सत्यत्वादिमान् है। जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण

१-श्रीभगवदुपासनस्याधिकारि साधारणसूचनाय सामान्य 'जन' शब्द प्रयोगः श्रीभगवतः सर्वाधिकार्यनुरूपोपासन विषयकत्वसाम्यात्। वैदिकोपासनेतु त्रैवर्णिक एवाधिकारीति। पौराणिके चतुर्थोऽपीति विवेकः।

(वे० र० मं०)

हैं, ब्रह्म अथवा नियन्ता एक ही तत्त्व है। [1]वेदमाता गायत्री से प्रतिपाद्य ब्रह्म भी रमाकान्त श्रीकृष्ण ही हैं।

श्रीनिम्बार्काभिमत ब्रह्म--

ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुये श्रीनिम्बार्क भगवान् ने 'वेदान्तकामधेनु' में लिखा है।

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।

परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वभाव से ही पञ्चक्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश) षड् विकार (जन्म, अस्तित्व, वृद्धि परिणाम, अपक्षय, मरण) प्राकृत, सत्त्व, रज और तमोगुण तथा इन गुणों से होने वाले समस्त दोषों से रहित है। ज्ञान (सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव) शक्ति (असम्भव को भी सम्भव करने का सामर्थ्य) बल (विश्व केधारण, पोषण आदि की शक्ति) ऐश्वर्य (समस्त ब्रह्माण्डों के शासन की शक्ति) तेज (अपरिमित परिश्रम का हेतु होते हुये भी परिश्रम का अभाव) वीर्य्य (स्वयम् अभिभूत न होते हुये दूसरों को पराभूत करने) दबाने वाली शक्ति तथा सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव, सौहार्द, सर्वशरण्य, कारुण्य, स्थैर्य्य, माधुर्य, मादर्व आदि सम्पूर्ण कल्याण गुणों की

१-तस्मात् गायत्रीमन्त्रप्रतिपाद्यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः स्वाभाविकाचिन्त्यानन्त-कल्याणगुणाश्रयः श्रीभगवान् पुरुषोत्तमो रमाकान्त एवेति सिद्धम्।
(वे० र० मं०)

एक राशि (पुञ्जस्वरूप) हैं।

व्यूह (चतुर्व्यूह-वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और द्वादश व्यूह-ऊर्ध्वपुण्ड्र विधायक 'केशवायनमः, नारायणायनमः, माधवायनमः' आदि द्वादश मन्त्रों के केशव, नारायण, माधव आदि द्वादश देवता) के अङ्गी है।

मुमुक्षु जनों द्वारा अनन्य से उपास्यरूपेण वरण करने योग्य ये ही हैं। ध्यान करने वाले भक्तों के पाप, पुण्य को आकर्षित (दूर) करने के कारण ये 'कृष्ण' पद के अभिधेय हैं। कमल नयन व कमला के द्वारा पूज्य दृष्टि से अवलोकित, सर्वाङ्ग सुन्दर, मनोहर, ध्याताओं के पाप-पुण्यों का हरण करने वाले श्रीहरि भगवान् श्रीकृष्ण का हमें ध्यान करना चाहिये॥१॥

अनन्त अचिन्त्य शक्तिमान् परब्रह्म श्रीकृष्ण के वाम भाग में आनन्द से विराजमान, अनुरूप (समानरूप) होने से परम सुन्दर, सहस्रों सहचरियों से सदा परिसेवित, भक्तों के सकल मनोरथ पूर्ण करने वाली, प्रेमाह्लाद शक्ति की अधिष्ठात्री देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजी का हमें स्मरण करना चाहिये॥२॥

यहाँ 'सखी सहस्रैः परिसेवितां' में 'सहस्र' और इसके भी बहुवचन के प्रयोग से पूज्यपाद श्रीनिम्बार्क भगवान् ने परब्रह्म श्रीकृष्ण की [1]अनन्तकोटि शक्तियों की ओर संकेत किया है। इन सबकी

१-पराऽस्य शक्ति र्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।
(श्वे ६/८)

अधिष्ठात्री [1]दुर्गा श्रीराधिकाजी ही हैं।

आह्लाद, ऐश्वर्य और आधार की अधिष्ठात्री प्रमुख तीन शक्तियाँ हैं। इनमें आह्लाद की अधिष्ठात्री श्रीप्रियाजी हैं। ऐश्वर्याधिष्ठात्री के रूप में श्रीरमा (श्रीरुक्मिणीजी) तथा आधार शक्ति के रूप में श्रीसत्यभामाजी का भी [2]'तु' शब्द से संग्रह किया है। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होने से ये सब ब्रह्मस्वरूप ही हैं।

ब्रह्म की व्यूहाङ्गिता--

'व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यम्' में व्यूह शब्द चतुर्व्यूह, द्वादश-व्यूह और अवतारों का भी उपलक्षक है।

चतुर्व्यूह--

अन्तःकरण के ४ भेद हैं-(१) अहङ्कार (२) चित्त (३)मन और (४) बुद्धि। क्रमशः शङ्कर, अच्युत, चन्द्र च चतुर्मुख-इनके देवता हैं। अहङ्कार से गर्व होता है। चित्त में चिन्तन करने से प्रकाश होता है। मन संशय-प्रधान होता है तो बुद्धि में निश्चय की प्रधानता

१-'दुर्गाऽधिष्ठातृदेवता' (क्रमदीपिका)। यः कृष्णः सैव दुर्गा या दुर्गा कृष्ण एव सः' (ब्रह्मसंहिता)। 'तत्र श्रीराधिकायाः सर्वश्रैष्ठ्यं श्रुतिप्रामाण्यात्' (सिद्धान्त रत्नां.) इत्यादि प्रमाणवचोभिः 'दुर्गा' इति शब्दस्य दुर्गमा दुर्ज्ञेय, दुर्लभावेत्यवयव शक्तिलभ्यार्थविशिष्टा श्रीराधिकैवार्थः अत्र श्रीराधिकैवाधि-ष्ठात्रीति वीवेकः।

२-'तु' शब्देन रमा-सत्यभामयोर्ग्रहणाम्। तु पुनः कृष्णस्य वामांगे रमां सत्यभामां स्मरेमेत्यर्थत (लघुमञ्जूषा)। 'तत्र श्रियो द्वे रूपे श्रीश्चलक्ष्मीश्चेति। या च लक्ष्मीः सा रुक्मिण्यादि रूपा।' (सिद्धान्त रत्नांजलि) 'वयमुक्तलक्षणस्याऽघट-घटनापटतराऽचिन्त्याऽनन्तविचित्रशक्तिमतो भगवतः श्रीकृष्णस्य वामांगेऽनुरूप-सौभगां लक्ष्मीं रुक्मिण्याख्यां सदा स्मरेम।'   (वे० र० मं०)

होती है। चतुर्भुज भगवान् चार कर-कमलों में चार ही आयुध है। इनमें गदा गर्व का प्रहार करने वाली है। शङ्ख चित्त में प्रकाश करने वाला है। श्रीसुदर्शन मन के संशय को दूरन करता है, तो पद्म बुद्धि द्वारा निश्चय कराता है। इन चारों आयुधों के प्रधान चार देवता हैं-- सङ्कर्षण, वासुदेव, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। श्रीनारदपञ्चरात्र में लिखा है--

''शङ्खः साक्षाद् वासुदेवो गदा सङ्कर्षणः स्वयम्।
बभूव पद्मं प्रद्युम्नोऽनिरुद्धस्तु सुदर्शनः ।।''

ये ही चार व्यूह भगवान् के अङ्ग हैं। इनमें मनोनेता सुदर्शन-स्वरूप अनिरुद्धनामक व्यूह ने ही श्रीनिम्बार्काचार्य के रूप में अवतार लिया है। इन सभी व्यूहों के अङ्गी स्वयं भगवान् हैं।

द्वादश व्यूह--

'देवो भूत्वा देवं यजेत' इस विधि के अनुसार अपने शरीर के द्वादश स्थानों में तिलक स्वरूप बताते हुए-केशवायनमः, नारायणाय नमः आदि मन्त्रों द्वारा केशव, नारायण आदि देवताओं का अर्चन सम्पन्न किया जाता है। ये भी द्वादश व्यूह नाम से प्रसिद्ध हैं। इन केशवादि सभी व्यूहों के अङ्गी परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

अवतारः--

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

(गी० ४/७-८)

इन वचनों के अनुसार धर्म ग्लानि व अधर्म का अभ्युत्थान होने पर साधु-परित्राण, दुष्ट-विनाश एवं धर्म संस्थापन के लिए भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं। अवतार का अर्थ-नित्य धाम से उतर कर इस भूमण्डल में पधारना। श्रीनिम्बार्क भगवान् ने तो अवतार का एकमात्र हेतु भक्तजनों को आनन्दित करना कहा है--'भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहहात्०'।

शास्त्रों ने अवतारों को तीन वर्गों में विभाजित किया है--(१) गुणावतार (२) पुरुषावतार और (३) लीलावतार। इन अवतारों का भी ग्रहण 'व्यूह' शब्द से ही किया जाता है।

गुणावतार--

सत्व, रज, तम, गुणों के अभिमानी देवता, काल के द्वारा सृष्टि, स्थित, संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश गुणावतार हैं।

पुरुषावतारः--

यह तीन प्रकार का होता है--(१) कारणार्णवशायी (२) गर्भोदशायी (३) क्षीरोदशायी।

१-महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाले प्रकृति के नियामक कारणार्णवशायी पुरुषावतार हैं।

२-समस्त विश्व के अन्तर्यामी गर्भोदशायी पुरुषावतार हैं।

३-प्रत्येक के अन्तर्यामी क्षीरोदशायी पुरुषावतार हैं।

लीलावतारः--

यह भी तीन प्रकार का होता है-(१) स्वांशावेशावतार

(२) शक्त्यंशावेशावतार (३) स्वरूपावतार।

१-नर-नारायण आदि स्वांशावेशावतार रूप लीलावतार है।

२-शक्त्यंशावेशावतार भी प्रभव व विश्व संज्ञक शक्तियों के कारण दो प्रकार का स्वीकृत किया गया है--

(क) धन्वन्तरि, परशुराम आदि प्रभव संज्ञक शक्त्यंशावेशावतार रूप लीलावतार हैं।

(ख) श्रीसनकादि, श्रीनारद, श्रीव्यास, श्रीकपिल देव, श्रीऋषभ-देव आदि विभव संज्ञक शक्त्यंशावतार रूप लीलावतार हैं।

(३) स्वरूपावतार भी दो प्रकार के होते हैं-(१) अंशावतार व (२) पूर्णावतार।

(क) श्रीहंस, मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, हयग्रीव आदि अंशावतार भूत स्वरूपावतार रूप लीलावतार हैं।

(ख) श्रीनृसिंह, दाशरथीराम, श्रीकृष्ण पूर्णावतार भूत स्वरूपावतार रूप लीलावतार हैं। ये सभी व्यूह एवं अवतार अङ्ग हैं और इन सब के अङ्गी (प्रधान) पर ब्रह्म स्वयं भगवान् हैं, अतः इन अङ्गों के अन्तर्गत देवताओं तथा सृष्टि, स्थिति संहार कर्त्ता ब्रह्मादि देवों के भी कारणरूप, बृहत्तम, परम उत्कृष्ट, ब्रह्म श्रीकृष्ण को ही व्यूहाङ्गी कहा है।

श्रीकृष्ण ही ब्रह्म है--

''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' १/१/१ इस सूत्र का वाक्यार्थ करते हुये श्रीनिम्बार्क भगवान् ने 'वेदान्त पारिजात सौरभ' में लिखा है--

''अनन्ताऽचिन्त्य-स्वाभाविक-स्वरूप-गुण-शक्तयादि-

भिर्बृहत्तमो यो रमाकान्तः पुरुषोत्तमो ब्रह्मशब्दाभिधेयस्त द्विषयिका जिज्ञासा सततं सम्पादनीया।''

यहाँ 'रमाकान्तः' का अर्थ 'राधाकान्तः' समझना चाहिये। 'रमणाद् रमा' इस योगवृत्ति से रमा का अर्थ राधा ही है। 'वेदान्त कौस्तुभ' में 'श्रीकृष्णः' 'श्रीवासुदेवः' आदि प्रयोगों से उक्त अर्थ की पुष्टि हो जाती है।

[1]अचिन्त्य, अनन्त, निरतिशय, स्वाभाविक बृहत्तम स्वरूप गुण आदि का आश्रयभूत सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर सर्वकारणरूप समानातिशय से शून्य, सर्वव्यापक, सर्ववेदैकवेद्य श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं।

[2] इसकी उपासना के लिये मुमुक्षु जीव अधिकारी हैं। ब्रह्म आदि शब्दों के वाच्य, सर्वज्ञ, स्वाभाविक, अचिन्त्य, अनन्त तथा यावदात्मवृत्ति गुण शक्ति आदि का आश्रय, ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र, प्रकृति,

---

१-'ब्रह्म चाचिन्त्यानन्तनिरतिशयस्वाभाविकबृहत्तमस्वरूपगुणाद्याश्रयभूतः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वेश्वरः सर्वकारणरूपः समानातिशयशून्यः सर्वव्यापकः सर्ववेदैकवेद्यः श्रीकृष्ण एव।

२-'मुमुक्षुरिहाधिकारी। विषयश्चास्य ब्रह्मादिशब्दाभिधेयः सर्वज्ञः स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तयावदात्मवृति-गुणशक्त्याद्याश्रयो ब्रह्मरुदेन्द्र-प्रकृति-परमाणु-काल-कर्म-स्वभावादि-नियन्ता दोषास्पृष्टसीमा चिदचित्स्वाभाविक भेदाभेदाश्रयो भगवान् वासुदेवः श्रीपुरुषोत्तमः। विषय-विषयिभावलक्षणः सम्बन्धः। श्रीभगवद्भावापत्तिलक्षणो मोक्षोऽत्र प्रयोजनम्।'' (वे. कौ. १/१/१)

परमाणु, काल, कर्म, स्वभाव आदि के नियन्ता, दोषों से अस्पृष्ट, चित् व अचित् के साथ स्वाभाविक भेदाभेद के आश्रय, [1]जगत् के अभिन्न, निमित्त, उपादान कारण, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति द्वारा निर्दिष्ट सत्यत्वादिमान्, भगवान् वासुदेव श्रीपुरुषोत्तम ही उपासना का विषय है। विषय-विषयिभाव लक्षण सम्बन्ध और भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष प्रयोजन है।

ब्रह्म जड़ नहीं है। यह तो सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है। यदि ब्रह्म जड़ होता तो 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छ. ६/२/३) आदि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित एक से अनेक रूप में होने की इच्छा उसमें कैसे होती ? ''प्रकृति के योग से ही ब्रह्म में सक्रियता का आभास होता है।'' ऐसा विचार भी शास्त्र व युक्त संगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि सत्त्वादिगुणाश्रय प्रकृति तो स्वयं जड़ है। इसमें ब्रह्म का ही शक्ति विक्षेप लक्षण परिणाम होता है। 'श्रीराधा प्रकृति है और श्रीकृष्ण ब्रह्म है--यह समझ भी उचित नहीं है। यहाँ तो राधाकृष्ण दोनों ही ब्रह्म हैं। एक ही ब्रह्म ज्योति के ये दो रूप हैं। श्रीकृष्ण ही ब्रह्म है-कहने का अभिप्राय है-श्री (राधा) ये युक्त कृष्ण।

एक ही ब्रह्म की युगल रूपता

ब्रह्म एक ही है। [2]वह रसस्वरूप है। उसे प्राप्त करके ही जीव आनन्दी (मुक्त) होता है। रसोपासना वैदिक है। इसे वेद से परे कहना भी उचित नहीं।

१-जगदभिन्ननिमित्तोपादानत्वे सति सत्यत्वादिमत्त्वं ब्रह्मलक्षणं सिद्धम्।
(वेदान्त कौस्तुभ १/१/२)

२.''रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'' (वै. अ. २ अनु. ७)

[१]एक ही अनादि पुरुष ब्रह्म में समस्त रसों का समाहार होता है। वह स्वयं नायिका रूप धारण करके रसोपासना में तत्पर हो जाता है। ब्रह्म के इस नायिका रूप की ही वेदविद् विद्वान् 'रसिकों के लिये आनन्दस्वरूपिणी श्रीराधा' कहते हैं। इसी हेतु यह लोक आनन्दमय है।

[२]श्रीराधाकृष्ण रस के सागर हैं। इनका देह एक ही है। लीलाविस्तार के लिये युगल रूप धारण किया है। [३]दोनों की परस्पर एक दूसरे से अधिक शोभा है। आह्लाद के साथ ऐश्वर्य भी आवश्यक है। आह्लाद की अधिष्ठात्री श्रीराधिका को वेद में 'श्री' शब्द से कहा है। ऐश्वर्य की स्वामिनी का प्रयोग 'लक्ष्मी' शब्द से किया है। [४]इनका परब्रह्म श्रीकृष्ण के साथ नित्य (अनादि सिद्ध) दाम्पत्य सम्बन्ध है।

लीला विभूति (अवतार काल) में तो इनके विवाह की लीलामात्र की गई है। [५]श्रीकृष्ण ने अपने ही स्वरूपान्तर श्रीराधा को

---

१. ''अनाद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति, तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति, स्वयमेव नायिका रूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति, तस्मादानन्दमयोऽयं लोक इति।''

(सामवेद संहिता उत्तरार्चिक)

२. 'येयं राधा यश्चकृष्णो रसाब्धिर्देहश्वैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत।'

(अथर्ववेद)

३. 'राधा या माधवो देवो माधवेनैव राधिका विभ्राजते जनेष्विति।'

(ऋग्वेद-आश्वलायनीय शाखा)

४. ''श्रीश्च वे लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'' (यजुर्वेद)

५. ''वृषभानोः कीर्तिदायामाविर्भव शुचिस्मिते।'' (ब्रह्मवैवर्त)

आज्ञा दी है ''आप वृषभानु के यहाँ कीर्तिदा में प्रकट होवें'' [१]श्रीवसुदेव के घर में स्वयं ने प्राकट्य लीला की।

तदनन्तर आप नन्द पत्नी यशोदा में अवतीर्ण अपनी योग-माया के पास जा पहुचे। नन्दपत्नी को निद्रा के वशीभूत करके पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न होने का कुछ पता नहीं लगने दिया। वह तो यह समझी कि इस बालक ने ही मेरे से जन्म लिया।[२]

इस अवतार काल में सम्पन्न हुई विवाह आदि लीलाओं में साधारण मानव की बुद्धि करके राधाकृष्ण को केवल ऐतिहासिक पुरुष मानना तथा श्रीराधा में परकीया नायिका को कल्पना करना एकमात्र अविवेक व भ्रम है। वास्तव में यह नित्य दिव्य दम्पती ही परब्रह्म है। ये किसी के पुत्र अथवा पुत्री नहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व के अभिन्न निमित्तोपादान कारण होने से ये ही जगत् के माता पिता हैं। [३]मूल प्रकृति श्रीसर्वेश्वरी श्रीराधिका ही सृष्टिकाल में महाविष्णु की माता होती है तथा श्रीकृष्ण ही जगत् के पिता है।

[४]लक्ष्मी, त्रिगुणात्मिका दुर्गा आदि शक्तियाँ श्रीराधिकाजी

---

१. वसुदेव-गृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः। जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥ (भाग. १०/३/२३)

२. ''यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुद्ध्यत।
न तल्लिंगं परिश्रान्ता निद्रयाऽपगतस्मृतिः॥ (भाग. १०/३/५६

३. 'सृष्टिकाले च सा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। माता भवेन्महाविष्णोः स एव च महान् विराट्॥ श्रीकृष्णो जगतां तातो जगन्माता च राधिका।
(श्रीनारदपञ्चरात्र)

४. ''यस्या अंशे लक्ष्मी दुर्गादिका शक्तिः।'' (अथर्व. पुरुषार्थ.)

के ही अंश हैं। इस दिव्य युगल में कोई अन्तर नहीं। [१]श्रीराधा-कृष्णात्मिका है तो श्रीकृष्ण राधात्मक है। [२]श्रीराधिका सर्वशक्तियों से सेवित हैं।

इस प्रकार एक ही ब्रह्म की यह युगलरूपता वेदादि शास्त्र प्रमाणों से सिद्ध है। उपासना में श्रीराधिका (गौर तेज) के सहित श्रीकृष्ण (श्यामतेज) की पूजा ध्यान आदि करना चाहिये। [३]गौर तेज के बिना केवल श्याम तेज का जप व ध्यान आदि करने वाला जीव पातकी होता है।

[४]युगल उपासना करने वाले भक्त के हाथ में मुक्ति स्थित है। जो कृष्ण है, वह ही राधा है। जो राधा है, वह ही कृष्ण है। इन दोनों में अन्तर (भेद) मानने वाले की संसार से मुक्ति नहीं होती, अतः एक ही ब्रह्म की युगलरूपता उपासना का विषय है।

वेदादि शास्त्र मूलकता--

''मैं मन्दिर में जाता हूँ। कथा श्रवण करता हूँ। प्रसाद पाने

---

१. ''राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।'' (ब्रह्माण्ड.)
''देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता॥'' (बृहद्गौतमीय तन्त्र)

२. अहंसर्वेश्वरी राधा सर्वशक्ति निषेविता'' (कृष्णयामलतन्त्र अ. १६)

३. ''गौरतेजो विना यस्तु श्याम तेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वाऽपि स भवेत्पात शिवे॥'' (संमोहन तन्त्र)

४. ''राधिका सहितं कृष्णं यः पूजयति नित्यशः।
भवेद् भक्तिर्भगवति मुक्तिस्तस्य करे स्थिता॥
यः कृष्णः साऽपि राधा या राधा कृष्ण एव सः।
अनयोरन्तरादर्शी संसारान्न विमुच्यते॥'' (श्रीनारद पञ्चरात्र)

में आनन्द आता है। गिर गया। चोट आगई। पीड़ा हो रही है। इत्यादि सक्रियता में सुख व दुःख का अनुभव प्रत्यक्ष होता है। शव शरीर निष्क्रिय है। माल्यार्पण से इसे सुखानुभूति नही होती। चिता में रखकर अग्निदाह कर देने से कोई दुःखानुभूति नहीं होती।'' आदि लोक व्यवहार व प्रत्यक्ष अनुभव से स्वतः यह ज्ञात हो जाता है कि शरीर जड़ है तथा इसमें रहने वाला चेतन (अहमर्थ) जीव है किन्तु ब्रह्म को जानने के लिये कोई ऐसा लोक व्यवहार या अनुभव नहीं होता, जिससे हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकें।

मैं आँख से सब कुछ देख लेता हूँ, पर आँख को नहीं देखता। दर्पण में जिस आँख को देखता हूँ, वह तो आँख का स्थान मात्र है। जैसा मेरे है वैसा ही आकार प्रकार अन्धे के भी है पर मैं देखता हूँ वह नहीं देखता। अतः यह मानना होगा कि देखने की कोई न कोई ऐसी शक्ति अवश्य है, जो दर्शन का साधन है किन्तु वह स्वयं नहीं दीखती। इससे उसकी सत्ता का निषेध तो नहीं कर सकते। यह ही कहा जा सकता है कि वह जो भी कुछ है-अमूर्त है। उसी का नाम चक्षुरिन्द्रिय है।

काला, पीला, हरा, लाल आदि रूप का ज्ञान इसी चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से होता है, अतः इसकी गणना ज्ञानेन्द्रियों में की गई है। इसी प्रकार रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द का ज्ञान कराने वाली जिह्वा, घ्राण, त्वक् व श्रोत्र इन्द्रियाँ हैं। ये सभी अमूर्त हैं। अमूर्त का भी आश्रय मूर्त ही है, अतः इनके स्थानों में आँख, कान, नाक आदि व्यवहार किया जाता हैं।

ये इन्द्रियाँ ज्ञान का साधन मात्र है। ज्ञानाश्रय व ज्ञानस्वरूप

न होने से ये सब जड़ (अचेतन) हैं। जड़ साधनों से जड़ का ज्ञान हो जाना स्वाभाविक है पर जो अजड़ (दिव्य) हैं उसका प्रत्यक्ष जड़ से होना सम्भव नहीं हैं। इसी तथ्य को विराट् दर्शन कराते समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया था। अपने दिव्य रूप का दर्शन कराने के लिये ही उसे दिव्य चक्षु का प्रदान किया था।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।
(गीता० ११/८)

अतएव सिद्धान्त मन्दाकिनीकार ने दिव्य के दो भेद किये हैं। जड़ और अजड़।

तच्च द्विधा भवेन्नूनं जड़ाजड़ विभागशः।'
(सि० मन्दा० १/४)

इसी प्रकार इन्द्रियों के भी दो भेद किये है-दिव्य व अदिव्य। श्रीसर्वेश्वर प्रभु (ब्रह्म) एवं मुक्त जीवों की इन्द्रियाँ दिव्य होती हैं और बद्ध जीवों की अदिव्य होती है।

तानि तु द्विविधान्येव दिव्यादिव्यप्रभेदतः।
सर्वेश्वरस्य मुक्तानां दिव्यानि प्रभवन्ति च।
बद्धानामितराण्येव स्थूलसूक्ष्मोभयानि च।।
(सि. मन्दा. ४/५-६)

अदिव्य इन्द्रियों से ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव नहीं पर ज्ञान अवश्य किया जा सकता है। इसमें इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्य ज्ञान से ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि साधारण अदिव्य इन्द्रियों में दिव्य ब्रह्म अर्थ के सन्निकर्ष का सामर्थ्य नहीं। अनुमिति करण रूप

अनुमान प्रमाण भी ब्रह्म का ज्ञान नहीं करा सकता, क्योंकि अनुमिति परामर्शजन्य होती है। व्याप्ति विशिष्ट पक्ष धर्मता के ज्ञान को परामर्श कहते हैं। व्याप्ति का अर्थ है-साहचर्य नियम।

'यत्र यत्रधूमस्तत्र तत्र वह्निः'-यह व्याप्ति बिना प्रत्यक्ष के नहीं बन सकती। इस प्रकार अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष मूलक होने से ब्रह्म का ज्ञान कराने में सशक्त नहीं होता।

कुछ लोग प्रायः कह दिया करते हैं--जिसका कभी प्रत्यक्ष नहीं होता, उसके ज्ञान से भी क्या प्रयोजन? 'ब्रह्म अथवा ईश्वर' तो निठल्लों की कल्पना मात्र है। 'मूर्त्ति' उनका एक खिलौना है। सेवा पूजा के बहाने वे इससे खेलते रहते हैं। यह सब निकम्मों के कालयापन का एक प्रकार है। जो मूर्त्ति अथवा मूर्त्ति में कल्पित भगवान् अपनी धूल नहीं झाड़ सकते, अपने ऊपर चढी चुहिया को नहीं हटा सकते, एक चिड़िया भी नहीं उडा सकते वे दूसरों का क्या हित कर सकेंगे?...... आदि आदि।''

वे नहीं सोचते कि ''विश्व के समस्त पदार्थों का ज्ञान एक मात्र प्रत्यक्ष से नहीं होता। कुछ ऐसे भी प्रमेय हैं, जहाँ प्रत्यक्ष व अनुमान की दाल नहीं गलती।''

घर में ही देख लीजिये। परिवार के किसी एक व्यक्ति को आप पिताजी कहते हैं? क्या प्रमाण है ? ये आपको उत्पन्न कर रहे हैं-इसका आपने कभी प्रत्यक्ष किया ? यदि नहीं, तो उसे पिता मानना भी क्या एक कल्पना ही है ? इन प्रश्नों का समाधान आपकी माताजी ही कर सकती हैं।

माताजी का प्रत्यक्ष आपका प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता।

क्योंकि उस ज्ञान में आपका इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष नहीं हुआ। माताजी कहती हैं-बेटा! ये तेरे पिता हैं। इन्हें पिताजी कहा करो।'' इन शब्दों पर विश्वास करके ही आप उन्हें पिताजी समझने लगे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'शब्द' भी एक ऐसा प्रमाण है, जिससे प्रमेय का ज्ञान किया जा सकता है। वह शब्द आप्त व्यक्ति का होना चाहिये। तभी यथार्थ ज्ञान होगा। पिता का परिचय कराने वाली माता आप्त अर्थात् यथार्थवादिनी है, अतः माता का शब्द (प्रमाण) पिता (प्रमेय) के ज्ञान का हेतु बन गया। इसी प्रकार अपने पूर्वजों, राजा - महाराजाओं, देश सेवकों तथा राम कृष्ण आदि को भी इतिहासगत शब्द प्रमाण से ही हम जान सकते हैं, अन्यथा नहीं। महर्षि वाल्मीकि व व्यास के लिखे रामायण एवं महाभारत इतिहास कोटि में आते हैं। इन्हीं में लिखे शब्द प्रमाण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति से सम्बद्ध सभी प्रमेय अदिव्य हैं तथा प्रकृति व काल से भिन्न दिव्य हैं। उक्त इतिहास ग्रन्थों से ही यह पता चलता है कि जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण श्रीसर्वेश्वर ब्रह्म है।

यह साधारण पुरुष नहीं है। सम्पूर्ण वेद इसी के निःश्वसित रूप हैं। इसी हेतु वेदों को अपौरूषेय माना है। ये ईश्वर की वाणी है, अतः सर्वोपरि शब्द प्रमाण है। ईश्वर जगत् का नियन्ता है। यह दिव्य है। इसका ज्ञान वेद की दिव्य वाणी से ही हो सकता है। मनुजी ने वेद को ही समस्त धर्मों का मूल कहा है--

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनुः २/६)

वेद के विपरीत अर्थ का प्रतिपादन करने वाली स्मृति आदि

की भी आपने निन्दा की है--

या वेद बाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।।
(मनुः १२/९५)

अतः ब्रह्म अथवा नियन्तृ तत्त्व का ज्ञान एकामत्र वेदादि-शास्त्र-मूलक ही है।

वेदादि शास्त्र और निम्बार्क सम्प्रदाय--

वेदान्त परिजात सौरभ, वेदान्त कौस्तुभ, वेदान्त कौस्तुभ प्रभा, दशश्लोकी, श्रीनारद नियमानन्द गोष्ठी रहस्य, वेदान्त रत्न-मञ्जूषा, सिद्धान्तरत्नाञ्जलि आदि-आदि निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्राण है, अतएव यह अपने को 'अनादि-वैदिक सम्प्रदाय' कह कर गौरव का अनुभव करती है।

पूज्य पाद आद्याचार्य एवं अन्य पूर्वाचार्य चरणों ने जिस स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है-उसे श्रुति व स्मृति के वचनों से ही प्रमाणित किया है।

[1]यदि कोई कहे--''मुमुक्षु के लिए वैदिक वर्णाश्रम धर्म अनावश्यक है''-तो यह ठीक नहीं। ऐसा करने पर सर्वशास्त्रों से विरोध होता है। [2]निम्बार्क सम्प्रदाय अपने-अपने वर्ण व आश्रम के अधिकारानुसार नित्य व नैमित्तिक कर्मों को भी भगवदाज्ञापालनात्मक

---

१. 'केचिदत्र वर्णाश्रम धर्माणां मुमुक्षुत्याज्यत्वं भावयन्ति, तत्तुच्छं सर्वशास्त्र विरोधादप्रमाणकत्वात्त्व।' (नारद. नि. गो. र. पु. ५८)

२. 'नित्यं नैमित्तिकं च स्ववर्णाश्रमाधिकारानुसारेणावश्यं कर्त्तव्यं भगवदाज्ञापालनात्मक भजन रूपत्वात्।' (नारद. नि. गो. र.)

भजन के रूप में करते रहने का आदेश देती है। जो महात्मा वैदिक मर्यादा को छोड़कर मनमानी अपनी रहनी सहनी बना लेते हैं, उनको निम्बार्क-सम्प्रदाय [1]नग्न कहती है।

वेदान्त दशश्लोकी के ब्रह्मनिरूपणात्मक 'स्वभावतोऽपास्त समस्तदोषम्' इत्यादि श्लोक को श्रीपुरुषोत्तमाचार्यचरण तो [2]वेदमाता गायत्री की व्याख्या रूप मानते हैं। इनके ध्येय गायत्री के विषय भूत हैं।[3]

इस प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय में जो भी कुछ तत्त्व है उसका मूल वेदादि शास्त्र ही है। सरलता की दृष्टि से संस्कृत के अनभिज्ञजनों का हित सम्पदान हेतु पूज्य आचार्य चरणों ने वाणी ग्रन्थों के रूप में जो कृपा-प्रसाद दिया है उसका वेद व शास्त्र की मर्यादा का अनतिक्रमण करते हुये ही अर्थ करना चाहिये। इससे विपरीत अर्थ को निम्बार्क सम्प्रदाय अपने में स्थान नहीं दे सकती।

पूर्वाचार्य चरणों ने वेद व शास्त्र को जो महत्व दिया है उसके कतिपय उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

'शास्त्रयोनित्वात्' (ब्र. सू. १/१/३) का वाक्यार्थ करते

---

१. 'ऋग्यजुः सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावति द्विज।
एतामुज्झति यो मोहात् स नग्नः पातकी स्मृतः॥ (नारद. नि. गो. र.)

२. किञ्च वेदमातृ-व्याख्यारूपोऽप्ययं श्लोकः। (वे-र-म)

३. तच्छब्दो गायत्री-विषय-भूत-ध्येयमन्तर्यामिणमाह।

हुये श्रीनिम्बार्क भगवान् ने ब्रह्म ज्ञान का कारण शास्त्र को ही माना है।[१]

श्रीश्रीनिवासाचार्यजी ने शास्त्र का वेद अर्थ किया है और सिद्धान्त पक्ष में वेद को ही ब्रह्म ज्ञान के लिये प्रमाण कहा है। अनुमानादि अन्य प्रमाणों से उसकी असम्भवता प्रतिपादित की है।[२]

[३]वेदादि शास्त्र श्रीसर्वेश्वर प्रभु के निःश्वसित हैं, अतः ये अन्तरङ्ग है। अन्य कल्पित अनुमानादि बहिरङ्ग हैं।

[४]"ब्रह्म अन्तरङ्ग वेदादि शास्त्रों से ही जाना जा सकता है बहिर्भूत अनुमानादि से नहीं" यह कहकर श्रीनिवासाचार्यजी महाराज ने ब्रह्म ज्ञान के लिये वेदादि शास्त्रों को ही अन्तरङ्ग प्रमाण स्वीकृत किया है।

---

१. 'शास्त्रमेव योनिस्तज्ज्ञप्तिकारणं यस्मिस्तदेवोक्तलक्षण लक्षितं वस्तु ब्रह्म-शब्दाभिधेयमिति। (वे. पा. सौ.)

२. ब्रह्म नानुमानादिगम्यं किन्तु वेद प्रमाणकम्। कुतः? शास्त्रयोनित्वात्। शास्त्रं वेदः योनिः कारणं ज्ञापकं प्रमाणं यस्मिस्तच्छास्त्रयोनिः। तस्य भावस्तत्वम्। तस्माच्छास्त्रयोनित्वात्। शास्त्र प्रमाणकत्वात् वैदैक प्रमाणकमेव ब्रह्मेति सिद्धान्तः। (वे. कौ.)

३. "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो युजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांग्रिरस इतिहासः पुराणं विद्यां उपनिषदः०" (बृ. ४/५/११)

४. "सर्वज्ञ-ब्रह्म-निःश्वसितैरन्तरंगैदैरेव ब्रह्म चेद्यं न बहिर्भूतैरन्यकल्पितानु-मानादिभिरिति फलितोऽर्थः।" (वे. कौ.)

समस्त वेदों का साक्षात् अथवा परम्परा से पर ब्रह्म वासुदेव श्रीकृष्ण में ही समन्वय होता है, अतः ये ही जिज्ञासा के विषय हैं।[1]

इस प्रकार वेदादि शास्त्रों को ही सर्वस्व व सर्वोपरि प्रमाण मान कर चलने व उपदेश करने वाले पूर्वाचार्य चरणों के लिये भी जो कोई कहे- 'पूर्वाचार्य चरणों को शास्त्रों की अपेक्षा नहीं तथा जो कोई वेद विहित विधि निषेध को जञ्जाल समझ कर तिलाञ्जलि देने के लिये तत्पर हो एवं शास्त्रीय विधि-विधान-परक उपासना को पूर्व पक्षीय उपासना मान कर वेद की निन्दा करे तो उसे उन्मत्त ही समझना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को शास्त्रकारों ने नास्तिक संज्ञा दी है। 'नास्तिको वेदनिन्दकः' यह वचन प्रसिद्ध है।

वस्तुतः आस्तिक दर्शनो में अन्यतम निम्बार्क दर्शन द्वारा प्रतिपादित श्रीराधाकृष्णात्मक युगल रूप ब्रह्म के ज्ञान का मूल एक मात्र वेदादि शास्त्र ही है।

अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता--

मृत्तिका से घट का निर्माण होता है। धटाकार में भी वह

---

१. जिज्ञास्यं ब्रह्म शास्त्र प्रमाणकमेव नान्यप्रमाणकम् समस्त श्रुतीनां साक्षात् परम्परया वा तत्रैव समन्वयात्। तस्माम् सर्वज्ञः सर्वाचिन्त्यशक्ति-विश्वजन्मादि-हेतुर्वेदैकप्रमाणगम्यः सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव जिज्ञासा-विषयस्तत्रैव सर्वं शास्त्रं समन्वेतीत्यौपनिषदानां सिद्धान्तः।

(ब्र. सू. १/१/५-वे. पा. सौ.)

तस्मात् कृत्स्नस्य वेदस्य सर्वज्ञे स्वाभाविकानन्ताचिन्त्यशक्तौ जगत्कारणे ब्रह्मणि पुरुषोत्तमे चिदचिद्भिन्नाभिन्ने श्रीकृष्णे समन्वय इति सिद्धम्।

(वे. कौ./११/४)

उसके साथ रहती है। इन दोनों का समवाय सम्बन्ध है। इसे ही तादात्म्य भी कहते हैं। जो कार्य जिस कारण में समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह उसका समवायि कारण होता है। घट (कार्य) मृत्तिका (कारण) में समवाय (तादात्म्य) सम्बन्ध से रहता है, अतः मृत्तिका घट (कार्य) की समवायि-कारण है। इस समवायी कारण को ही उपादान कहते हैं। यह कार्य से अभिन्न होता है।

घट-निर्माण के सहकारी दण्ड, चक्र, चीवर आदि साधन घट (कार्य) के निमित्त कारण होते हैं। ये अपने कार्य (घट) से भिन्न होते हैं, अभिन्न नहीं।

''यह विश्व पृथिव्यादि महाभूतों की समष्टि है। पृथिव्यादि भूत सावयव व कार्य रूप हैं। जो जो कार्य होता है, वह सकर्तृक होता है। वह कर्ता ही उस कार्य का कारण हो जाता है, अतः जिस प्रकार घट (कार्य) बिना कुम्भकार के नहीं बनता। वह घट का कर्त्ता होने से उसका कारण है उसी प्रकार पृथिव्यादि सावयव भूत भी कार्य रूप होने से सकर्तृक ही हैं। इनका जो भी कोई कर्त्ता है, वह ही कारण ब्रह्म है।'' इस अनुमान पद्धति से ब्रह्म को जगत् का कारण सिद्ध करने लगें तो वह सही नहीं होगा। क्योंकि उक्त अनुमान में पृथिव्यादि की कार्य रूपता मानी है और कार्य रूपता होने से ही उसमें सकर्तृकता तथा कर्त्ता के रूप में ब्रह्म की कारणता सिद्ध की गई है। इसमें पृथिव्यादि को हेतु बनाया है। वह सभी सिद्ध न होने से असिद्ध हेत्वाभास है। पृथिव्यादि स्थूल भूत को प्रत्यक्ष से जान लिया है किन्तु आकाशादि नित्य व विभु पदार्थ भी एक महाभूत है, जबकि उत्पत्ति का ज्ञान बिना वेद के नहीं होता और इसके ज्ञान के

बिना इसमें कार्यत्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः शब्द में गुणत्व सिद्ध करने के लिये चाक्षुषत्व हेतु के समान उक्त हेतु स्वरूपासिद्ध होने से यह अनुमान हेत्वाभास ग्रस्त हो गया है।

यदि कहें--'आकाशादि महाभूतों की उत्पत्ति का ज्ञान वेद से कर लिया जावेगा। ज्ञात होने पर इनकी कार्यता सिद्ध हो जावेगी। इससे ब्रह्म के अनुमान में स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास दोष नहीं रहेगा।' तो वह प्रकार भी उचित नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार महाभूतों की उत्पत्ति का ज्ञान वेद से करेंगे। उसी प्रकार ब्रह्म का भी ज्ञान वेदों द्वारा स्वतः हो जावेगा। फिर अनुमान की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। शब्द प्रमाण से ही सब कुछ सिद्ध हो जावेगा, जो दार्शनिकों का परम उपादेय प्रमाण हैं।

यदि कहें--'पृथिवी-अंकुर आदि प्रसिद्ध कार्यों का तो कार्यत्व हेतु से तत्कारणत्वेन ब्रह्म का अनुमान किया ही जा सकता है, तो यह भी ठीक नहीं होगा। क्योंकि अंकुर आदि कार्यों की भूमि, बीज, जल, जीव आदि दृष्ट पदार्थों में कारणता सम्भव है फिर एतदर्थ अदृष्ट ब्रह्म की कारणता कल्पित करना सर्वथा असङ्गत है।

वास्तव में जहाँ-जहाँ कार्यत्व दृष्ट है, वहाँ-वहाँ उस-उस कार्य के अनुरूप क्षेत्रज्ञ कर्ता भी अनुमान से सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण विश्व का कार्यत्व वेद के बिना अप्रसिद्ध होने से ज्ञात नहीं होता, अतः जगत्कर्ता ब्रह्म भी वेद के बिना हजारों अनुमान करने पर भी जाना नहीं जा सकता।

प्रत्यक्ष प्रमाण से भी ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता--क्योंकि

ब्रह्म का प्रत्यक्ष करने में इन्द्रियों का कोई सामर्थ्य नहीं है। यह चर्चा पीछे की जा चुकी है।

ऐसी स्थिति में बहिर्भूत अन्य कल्पित अनुमानादि प्रमाणों से ब्रह्म का कारणता का ज्ञान सम्भव नहीं है। सर्वज्ञ ब्रह्म के निःश्वसित होने से अन्तरङ्ग वैदिक शब्द प्रमाण से ही ब्रह्म से जगत्कारणता ज्ञात हो सकती है।

वेदों में ब्रह्म को जगत्कारण कहा है। सृष्टि, स्थिति आदि जिससे होती है, वह ही ब्रह्म है। तैत्तिरीय उपनिषद् के भृगुवल्ली नामक तृतीय अध्याय के प्रथम अनुवाक में भृगुवरुण संवाद रूप आख्यायिका के प्रसङ्ग में निम्नलिखित मन्त्र है--

''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।''

(तै. ३/१)

'जिस पुरुषोत्तम से महदादि तृण पर्यन्त भूतों की उत्पत्ति होती है' इस मन्त्र भाग से 'सृष्टि' कही गई है। 'उत्पन्न हुये प्राणी जिसके द्वारा जीवित रहते हैं, यह 'स्थिति' का बोधक है। 'जिसमें पुनः लीन हो जाते हैं, इससे प्रलय का संकेत किया है। 'समस्तकर्मों का ध्वंस होने के पश्चात् जिसको प्राप्त होते हैं' यह मोक्ष का ज्ञापक है। यहाँ अनादि निधन चेतन के देहादि से संयोग के हेतु रूप विचित्र विज्ञान के विकास को जन्म कहा है और उस के संकोच पूर्वक

कारण में प्रवेश का नाम प्रलय है।[1]

इस शब्द प्रमाण से यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रीपुरुषोत्तम ब्रह्म ही जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय व मोक्ष का कारण है।

ब्रह्म का कोई पति, ईशिता व लिङ्ग (ज्ञापक हेतु) नहीं है। वह ही सबका कारण, जनिता व स्वामी है।[2]

ब्रह्म का कोई कार्यरूप (प्राकृत शरीर) तथा कारण (ज्ञान व कर्म की साधन भूत इन्द्रियाँ) नहीं है। इसकी परा (स्वरूप से विलक्षण) स्वभाविकी (स्वस्वरूप के समान नित्य) विविध (अघट घटना पटीयसी अचिन्त्व अनन्त प्रकार की) शक्ति सुनी जाती हैं। इसमें अनिर्वचनीयत्व,मिथ्यात्व, औपाधिकत्व आदि की कल्पना करना उचित नहीं है। समस्त, देश, काल, वस्तु विषयक प्रत्यक्ष अनुभव रूप ज्ञान, विश्वधारणादि शक्ति रूप बल, ज्ञान व बल के साथ विश्व की सृष्टि आदि क्रिया तथा सभी गुण, कर्म आदि भगवान् श्रीपुरुषोत्तम ब्रह्म के ही है। इसके समान व अधकि अन्य कोई नहीं है।[3]

---

१. ''यतो यस्माच्छ्रीपुरुषोत्तमादिमानि महदादितृणान्तानि भूतानि जायन्ते, इति सृष्टिरुक्ता येन जातानि जीवन्तीति स्थितिरुक्ता, अभिसंविशन्तीति लयो दर्शितः यत्प्रयन्ति यं सर्वकर्मध्वंसानन्तरं प्राप्नुवन्तीति मोक्ष उक्तः। अत्र चेतनस्यानादि-निधिनस्य दोहदिसंयोगहेतुकविचित्रविज्ञानविकाशो जन्म, तत्संकोचपूर्वकः कारणप्रवेश प्रलयः। (वेदान्त कौस्तुभ १/१/२)

२. न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं कारणाधिपाधिपो न चास्य काश्चिज्जनिता न चाधिपः।।(श्वे.६/९)

३. न तस्य कार्यं कारणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराऽस्य शक्ति विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।। (श्वे.६/८)

[1]परा अपरा आदि शब्द वाच्य अपनी स्वाभाविकी सूक्ष्म अवस्था में वर्तमान इन शक्तियों तथा उन-उन शक्तियों में निहित सद्रूप कार्यों को स्थूल रूप से प्रकाशित करना उपादान कारणत्व है।

[2] अपने-अपने अनादि कर्म संस्कारों के वशीभूत अत्यन्त संकुचित भोग-स्मरण के अयोग्य ज्ञान धर्म वाले चेतनों (जीवों) को स्वकर्मफल भोग के योग्य ज्ञान प्रकाशित करके उन-उन कर्मों के फल व भोग साधनों के साथ नियोजित करना निमित्त कारणत्व है।

'सर्व खल्विदं ब्रह्म' (छा. ३/१४/१), 'यदिदं किञ्च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् (तै. २/६), 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'(श्वे. ६/११) इत्यादि श्रुति वचनों से जगद् की ब्रह्मात्मकता प्रतिपादित की गई है, अतः ब्रह्म जगद् से अभिन्न है। इस प्रकार ब्रह्म की जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणता शास्त्र प्रमाण से ज्ञात होती है।

---

१. परापरादि शब्दाभिधेयानां स्वस्वाभाविकीनां सूक्ष्मावस्थापन्नानांशक्तीनां तद्गत-सद्रूप-कार्याणाञ्च स्थूलतया प्रकाशकत्वमुपादानत्वम्।

२. स्वस्वानादिकर्म संस्कार-वशीभूतात्यन्तसंकुचितभोगस्मरणानर्हज्ञान धर्माणां चेतनानां कर्मफलभोगार्हज्ञानप्रकाशनेनतत्तत्कर्मफलतत्तद्भोगसाधनैः सह योजयितृत्वं निमित्तत्वम्।

(वेदान्त कौस्तुभ १/१/२)

पदार्थ परिचय--

श्रीनिम्बार्क दर्शन में कुल कितने पदार्थ माने गये हैं और उनका वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है ?

इसका परिचय करना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में श्री वैष्णवदासजी शास्त्री ने 'सिद्धान्तमन्दाकिनी' (संस्कृत ग्रन्थ) और 'पदार्थ परिचय' (हिन्दी निबन्ध) लिखा है, जहाँ आकर ग्रन्थों के आधार पर पदार्थों का विस्तृत विवेचन किया है। यहाँ केवल वस्तु नाम सङ्कीर्तन द्वारा सामान्य ज्ञान के लिए पदार्थों की गणना मात्र प्रस्तुत की जाती है।

१-चित् (जीव) २-प्राकृत अचित् ३-काल स्वरूप अचित् ४-अप्राकृत अचित् ५-ब्रह्म (नियन्ता) ये पाँच प्रमेय पदार्थ हैं। जीव और ब्रह्म ज्ञान स्वरूप व ज्ञान के आश्रय भी हैं। धर्मीभूत ज्ञान के रूप में जीव व ब्रह्म हैं तो इनमें रहने वाला सूर्य की प्रभा के समान प्रकाश गुण का आश्रय होने से धर्मभूत ज्ञान भी एक स्वतन्त्र प्रमेय (छठा पदार्थ) माना गया है। जीव व ब्रह्म दोनों धर्मीभूत ज्ञान होते हुए भी अल्पज्ञता व सर्वज्ञता तथा परतन्त्र सत्ता व स्वतन्त्र सत्ता के कारण पृथक्-पृथक् हैं।

इनमें प्राकृत अचेतन व काल स्वरूप अचेतन को जड़ (अदिव्य द्रव्यों में परिगणित किया है।

शेष चार पदार्थों की गणना अजड़ (दिव्य) द्रव्यों में की गई हैं।

'सिद्धान्तमन्दाकिनी' के पदार्थ संग्रह प्रकरण में द्रव्यों की गणना निम्न लिखितानुसार हैं--

द्रव्यं प्राकृत-कालौ हि शुद्ध सत्त्वं शरीरकः ।
ईश्वरो धर्म ज्ञानं च कथितं तत्त्वपारगैः ।।

यहाँ 'शुद्ध सत्त्व' से अप्राकृत (दिव्य) अचेतन तथा 'शारीरिकः' से जीव (चित् पदार्थ) अभिहित हुए है। इन छह द्रव्यों के अतिरिक्त दो अद्रव्य भी हैं।

१--गुण और २--अभाव ।

गुण आठ प्रकार के हैं तथा अभाव एक ही प्रकार का (अत्यन्ताभाव) स्वीकृत किया गया है।

रूपं रसस्तथा गन्धः स्पर्शः स शब्द एव च ।
सत्ता संयोग-शक्त्याख्या गुणा एते प्रकीर्तिताः ।।

'अत्यन्ताभाव एकैव' (सि.मं. तरङ्ग १ श्लो.१०-११)

प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द--ये तीन प्रमाण हैं। ब्राह्य व आभ्यन्तर भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। सुखावबोध के लिए पदार्थ परिचय चित्र निम्नलिखितानुसार प्रस्तुत किया जाता है।

अन्य दर्शनों के सभी प्रमेयों का अन्तर्भाव निम्बार्क दर्शन के उल्लिखित प्रमेयों में हो जाता है। यहाँ तो नाम मात्र से वस्तु सङ्कीर्तन किया गया है। इनके विस्तृत परिचय के लिए 'सिद्धान्त मन्दाकिनी' पदार्थ परिचय तथा अन्य आकार ग्रन्थों का अध्ययन व मनन आवश्यक है।

पदार्थ
प्रमाण
प्रमेय
प्रत्यक्ष
अनुमान
शब्द
द्रव्य
अद्रव्य
ब्राह्य
आभ्यन्तर (निदिध्यासन)
जड़ (अदिव्य)
अजड़ (दिव्य)
चाक्षुष
रासन
घ्राण
स्पार्शन
श्रावण
प्राकृत
काल
(अचेतन)
(अचेतन)
पराक्
प्रत्यक्
धर्मभूतज्ञान
त्रिपादूर्ध्वधामादि (अप्राकृत अचेतन)
पर (ब्रह्म)
अपर (जीव)
गुण
अभाव
(अत्यन्ताभाव)
रूप
रस
गन्ध
स्पर्श
शब्द
संयोग
सत्ता
शक्ति
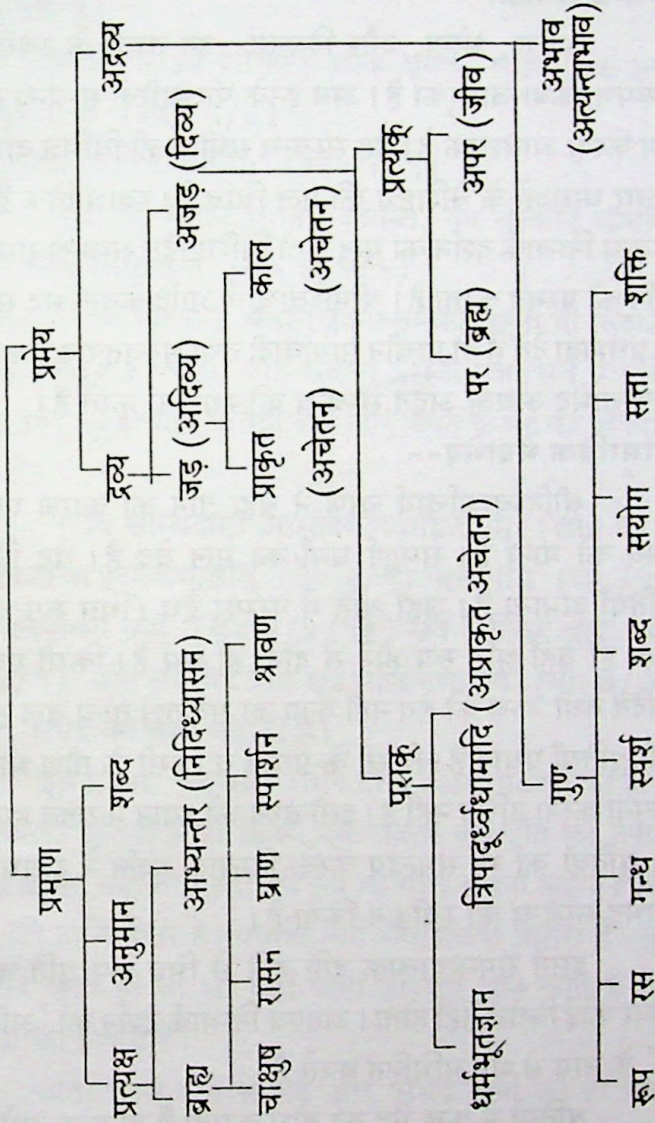
सम्बन्ध समीक्षा--

भोक्ता, भोग्य, और नियन्ता--इन तत्त्वों के स्वरूप का निरूपण किया जा चुका है। अब इनके पारस्परिक सम्बन्ध का भी ज्ञान करना आवश्यक है। यह सम्बन्ध समीक्षा ही विभिन्न दार्शनिक विचार धाराओं के वैशिष्ठ्य की मूल भित्ति है। स्वाभाविक द्वैताद्वैत सम्बन्ध निम्बार्क दर्शन का मूल है तो विशिष्टाद्वैत सम्बन्ध रामानुज-दर्शन को प्रस्तुत करता है। श्रीमाध्वाचार्य आदि केवल भेद सम्बन्ध को प्रधानता देते हैं तो प्राचीन मायावादी तथा भगवत्पाद शंकराचार्य अत्यन्ताभेद अथवा अद्वैत सम्बन्ध की स्थापना करते हैं।

स्वाभाविक भेदाभेद--

श्रीनिम्बार्काचार्य चरण ने ब्रह्म ज्ञान का कारण एकमात्र शास्त्र को माना है। सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद है। वेद विपरीत स्मृतियाँ अमान्य हैं। जहाँ श्रुति में परस्पर द्वैध (भिन्न रूपत्व) भी आता हो वहाँ श्रुति रूप होने से दोनों ही धर्म हैं। किसी एक को उपादेय तथा अन्य को हेय नहीं कहा जा सकता। तुल्य बल होने से सभी श्रुतियाँ प्रधान हैं। किसी के प्रधान व किसी के गौण भाव की कल्पना करना उचित नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भिन्न रूप श्रुतियों का भी समन्वय करके निम्बार्क दर्शन ने स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध को स्वीकृत किया है।

इसमें समन्वयात्मक दृष्टि होने से भिन्न रूप श्रुति का भी परस्पर कोई विरोध नहीं होता। अतएव निम्बार्क दर्शन को 'अविरोध मत' के नाम से भी अभिहित करते हैं।

श्रुतियों में कुछ भेद का बोध कराती हैं तो कुछ अभेद का

निर्देश देती हैं।

यथा-'पराऽय शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया च' (श्वे० ६/८)
'सर्वांल्लोकानीशते ईशनीभिः' (श्वे० ३/१)

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति' (तै० ३/१/१)

'नित्यो नित्यानां चेतश्नचेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् (कठ० ५/१३) 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।' (गीता १०/८) इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म और जगत् के भेद का प्रतिपादन करती हैं।

'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६/२/१) आत्मा वा इदमेकमासीत्' (तै० २/१) 'तत्त्वमसि' (छा./१४/३) 'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ० २/५/१९) सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छा. ३/१४/१) 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव' (गी. ७/७/) इत्यादि अभेद का बोध कराती हैं।

इस प्रकार 'भेद और अभेद दोनों विरुद्ध पदार्थों का निर्देश करने वाली श्रुतियों में से किसी एक प्रकार की श्रुति को उपादेय अथवा प्रधान कहें तो दूसरी को हेय या गौण कहना पड़ेगा। इससे शास्त्र की हानि होती है। क्योंकि वेद सर्वांशतया प्रमाण हैं। श्रुति द्वैध यदि कहीं हो तो भी वहाँ दोनों ही धर्म माने जाते हैं ऐसा स्मृतियों का निर्णय है।

अतः तुल्य होने से भेद और अभेद दोनों को ही प्रधान मानना होगा, व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं। भेद अभेद नहीं

हो सकता और अभेद को भेद नहीं कह सकते। ऐसी स्थिति में कोई ऐसा मार्ग निकालना होगा कि दोनों में विरोध न हो तथा समन्वय हो जावे।

श्रीनिम्बार्काचार्यपाद ने उक्त समस्या का समाधान करके ऐसे ही अविरोधी समन्वयात्मक मार्ग उपदेश किया है।

आपश्री का कहना है--

'ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है। उपादान अपने कार्य से अभिन्न होता है। स्वयं मिट्टी ही घड़ा बन जाती है। उसके बिना घड़े की कोई सत्ता नहीं। कार्य अपने कारण में अति सूक्ष्म रूप से रहते हैं। उस समय नाम रूप का विभाग न होने के कारण कार्य का पृथक् रूप से ग्रहण नहीं होता पर अपने कारण में उसकी सत्ता अवश्य रहती है। इस प्रकार कार्य व कारण की ऐक्यावस्था को ही अभेद कहते हैं।'

'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्०' इत्यादि श्रुतियों का यह ही अभिप्राय है। इसी से सत् ख्याति की उपपत्ति होती है। सद्रूप होने से यह अभेद सवाभाविक है।

दृश्यमान जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है। वह दूध से दही जैसा नहीं है। दूध, दही बनकर अपने दुग्धत्व (दूधपने) को जिस प्रकार समाप्त कर देता है, वैसे ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होकर अपने स्वरूप को समाप्त नहीं करता, अपितु मकड़ी के जाले के समान अपनी शक्ति का विक्षेप करके जगत् की सृष्टि करता है। यह ही शक्ति-विक्षेप लक्षण परिणाम है।

'यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः

स्वभावतो देव एकः। समावृणोति स नो दधातु ब्रह्माव्ययम्॥

(श्वे० ६/१०)

'यदिदं किञ्च तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'

(तै. २/६)

इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं।

ब्रह्म ही प्राणियों को अपने-अपने किये कर्मों का फल भुगताता है, अतः जगत् का निमित्त कारण होने से ब्रह्म और जगत् का भेद भी सिद्ध होता है, जो कि अभेद के समान स्वाभाविक ही है।

उपादान व निमित्त कारण के सम्बन्ध में विशेष विवेचन 'अभिन्न निमित्तोपादान कारणता' शीर्षक बिन्दु में किया जा चुका है।

इसी समन्वयात्मक दार्शनिक प्रणाली को स्वाभाविक भेदाभेद अथवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत शब्द से अभिहित करते हैं, जिसका उपदेश श्रीनिम्बार्काचार्य चरण ने किया है।

अन्य मत--

तत्त्व सिद्धान्त बिन्दुकार ने तत्त्वत्रय के सम्बन्ध निरूपण विषय में अन्य मतों का भी उत्थापन करके उनकी समीक्षा की है। अन्ततः सिद्धान्त पक्ष के रूप में उक्त 'स्वाभाविक भेदाभेद' की ही स्थापना की है।

अन्य मतों में यहाँ अत्यन्ताभेद, औपाधिक भेदाभेद, केवल भेद और विशिष्टाद्वैत वादों की समीक्षा की है। जिज्ञासु जनों के हितार्थ उक्त मतों का स्वरूप निरूपण तथा आलोचना संक्षिप्त व

सरल रूप में यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

अत्यन्ताभेद (अद्वैतमत)--

यह मायावादियों का सिद्धान्त है। इसी के आधार पर आगे चल कर भगवत्पाद श्रीआद्य शंकराचार्य ने अद्वैत-मत की स्थापना की है।

इस मत के अनुसार-'सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्।' (छा० ६/२/१) 'आत्मा वा इदमेकमासीत्') तै० २/१) 'तत्त्वमसि, (छा० ६/१४/३) 'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ०२/५/१९) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३/१४/१)

ये अभेद बोधक श्रुतियाँ एकमात्र ब्रह्म को ही सद् वस्तु कहती हैं। ब्रह्म से भिन्न किसी द्वितीय का पारमार्थिक अस्तित्व नहीं है। 'जीव और जगत्' माया का कार्य है। यह पारमार्थिक सत्य नहीं हैं, क्योंकि अन्तःकरण उपाधि से अवच्छिन्न ब्रह्म ही जीव है। प्रपञ्च का भी आरोप या भ्रम में ही किया जाता है, अतः जीव व जगत् मिथ्या है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह अद्वैत मत का सिद्धान्त है।
'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।'
(श्वे० ६/१३) (काठक० २/२/१३)

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां समानाम्।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥
(श्वे० ४/५)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति ॥
(श्वे० ४/६)

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृ-भोगार्थ-युक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥
(श्वे० १/९)

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्ध्य।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥
(काठक० १/३/१)

इत्यादि द्वैत बोधक श्रुतियों की व्याख्या अद्वैत परक ही करनी होगी, क्योंकि ये सब वाक्य मुख्यार्थ में अभिहित नहीं हुए हैं, गौण अर्थ में ही उक्त हुए हैं।

जीव जब तक माया के बन्धन में है, तभी तक यह सत्यवत् भासित होता है और जगत् भी इसके लिए तभी तक सत्य है, जब तक अज्ञान का नाश न हो। अज्ञान की निवृत्ति एवं ज्ञान उदय होने पर तो ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। सभी तरह का द्वैत बोध तिरोहित हो जाता है।

उस समय ज्ञाता या ज्ञेय कुछ भी नहीं रहता है। स्वतः सिद्ध ब्रह्म का ही स्फुरण होता है। जीव ब्रह्म सागर में अपना अस्तित्व खो बैठता है। वह ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। उस समय भेद सम्बन्ध किसका रहेगा?

अतः उक्त तत्त्वत्रय में भेद का भान अज्ञान कृत है। वास्तव में तो इनका अत्यन्त अभेद सम्बन्ध ही है। इसी का नाम अद्वैत है। इसमें द्वैत (भेद) बोध पारमार्थिक नहीं है।

समीक्षा--

उक्त मत (अत्यन्ताभेद) की समीक्षा करते हुए ग्रन्थकार ने

इसके अनौचित्य के सम्बन्ध में दो तर्क प्रस्तुत किये हैं--

(१) भोक्ता, भोग्य व नियन्ता-इन तीनों तत्त्वों के पृथक् पृथक् गुण व स्वभाव का आपस में साङ्कर्य हो जायेगा।

(२) शास्त्र द्वारा प्रतिपादित भोक्ता (जीव) के बन्धन व मोक्ष की व्यवस्था बाधित हो जावेगी।

(१)

यदि तीनों तत्त्वों में कोई भेद नहीं है, अत्यन्त अभेद सम्बन्ध है तो जीव (भोक्ता) भी ब्रह्म के समान सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होने लगेगा, तथा नियन्ता (ब्रह्म) में भी उत्क्रान्ति, गति, आगति आदि जीव के एवं अचेतन प्रकृति के गुण स्वभाव का साङ्कर्य हो जायेगा।

भोग्य (अचेतन प्रकृति) भी जीव के समान घूमने, फिरने व बोलने लगेगी। एक दूसरे के गुण स्वभाव आपस में एक दूसरे से मिल जायेंगे तो भोक्ता, भोग्य व नियन्ता को पहिचानना कठिन हो जायेगा।

शव और जीवित शरीर, स्वस्थ अस्वस्थ, सुखी-दुःखी, मनुष्य व पशु, चेतन व अचेतन, स्वामी व सेवक, अल्पज्ञ व सर्वज्ञ में अत्यन्त अभेद सम्बन्ध मानने पर (परस्पर गुण-स्वभाव साङ्कर्य होने से) कोई अन्तर ही नहीं होगा। वास्तव में यह अभेद तो शास्त्र व प्रत्यक्ष अनुभव से भी सर्वथा विपरीत है। जब यह त्रिरूपता (भोक्ता, भोग्य, नियन्ता ये तीनों तत्त्व) श्रुति व सूत्रों से साधित पृथक्-पृथक् गुण स्वभाववाली है तो इसमें अत्यन्त अभेद सम्बन्ध को स्वीकृत करना शास्त्र संगत नहीं है।

(२)

अत्यन्त अभेद सम्बन्ध स्वीकृत करने पर एक दूसरी यह भी आपत्ति होगी कि अन्तःकरण की उपाधि हटते ही जीव ब्रह्म हो जायेगा। जीवित अवस्था में भी 'सोऽहम्' कह कर जीव अपने को ब्रह्म ही मानता रहेगा फिर ब्रह्म का तो विभु होने से कोई बन्धन व मोक्ष होता नहीं। यह तो व्यवस्था शास्त्रों में जीव के लिए ही है। बन्धन मोक्ष व पुनर्जन्म आदि जीव के ही होते हैं। ऐसी स्थिति में शास्त्र द्वारा प्रतिपादित जीव की बन्धार्हता व मोक्षार्हता की व्यवस्था बाधित हो जायेगी। अतः अत्यन्त अभेद (अद्वैत) सम्बन्ध स्वीकार करना उचित नहीं है।

विशेष--

अत्यन्त अभेद अथवा अद्वैतवाद के सम्बन्ध में विशेष रूप से सप्रमाण समीक्षा व्रजविदेही महन्त और चतुःसम्प्रदाय के श्री महन्त श्रीस्वामी धनञ्जयदासजी काठिया बाबा (तर्क तर्क व्याकरण तीर्थ) ने स्वरचित 'निम्बार्क वेदान्त का संक्षिप्त सार' नामक ग्रन्थ में की है। विशेष जिज्ञासुओं को उक्त ग्रन्थ का (पृ. सं. १०५ से १२५ तक का) अध्ययन तथा मनन करना अत्यन्त आवश्यक है।

औपाधिक भेदाभेद--

श्रीभास्कराचार्य आदि, भेद को औपाधिक तथा अभेद को वास्तविक मानते हैं। ब्रह्म सूत्रों का भाष्य करते हुए श्री भास्क-राचार्य ने प्रतिपादित किया है कि 'जीव[१] और ब्रह्म में अभेद

---

१. जीव-परयोश्च स्वाभाविकोऽभेद औपाधिकस्तु भेदः स तन्निवृत्तौ निवर्त्तते।
(ब्र. सू. ४/४/४ का भास्कर भाष्य)

स्वाभाविक तथा भेद औपाधिक है। उपाधि हटने पर भेद भी समाप्त हो जाता है।

[1]इस प्रपञ्च जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है और अपने कारण ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।

[2]मुक्तावस्था में कोई दूसरा आत्मा नहीं रहता। वह मुक्त जीव परमात्मा ही बन जाता है।

[3]जीव का अणुत्व औपाधिक है। [4]कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्म भी उपाधि जन्य हैं, अतः आगन्तुक व अनित्य हैं। ये शरीर के साथ ही समाप्त हो जाते हैं।

श्रीभास्कराचार्य ने ब्रह्म का ही कार्य रूप से नानात्व (भेद) और कारण रूप से अभेद स्वीकृत किया है। सुवर्ण रूप में अभेद तथा कुण्डल आदि आकार के रूप में भेद होने का दृष्टान्त दिया है-

कार्यरूपेण नानात्वमभेदः कारणात्मना।
हेमात्मना यथाऽभेदः कुण्डलाद्यात्मना भिदा।।

(ब्र. सू. १/१/४ का भास्कर भाष्य)

---

१. यतः प्रादुर्भूतास्तत्रैव स्वकारणे प्रलीयन्ते ।
(ब्र. सू. ४/२/१४ का भास्कर भाष्य)

२. मुक्तः परमात्मा भवतीति समुदितार्थः नहि मुक्तावस्थायामात्मान्तरं कारणान्तरं वाऽस्ति। (ब्र. सू. १/४/२१ का भास्कर भाष्य)

३. तदिदमौपाधिकमणुत्वं जीवस्यातो द्रष्टव्यम्।
(ब्र. सू. २/३/२६ का भास्कर भाष्य)

४. औपाधिकमिदं कर्त्तव्यं यावद्युपाध्यनुवर्त्तते कर्तृत्व भोक्तृत्वे यावच्छरीर-भाविनी। (ब्र. सू. ३/४/२६ का भास्कर भाष्य)

यहाँ कुण्डलादि आकार ही भेदबोध की उपाधि है। यह ही ब्रह्म की कार्यरूपता है।[1]

सारांशतः ब्रह्म के साथ जीव व जगत् का भेदाभेद केवल कार्यावस्था में ही रहता है, अतः कार्यावस्था में यह सत्य है। कारणा-वस्था, प्रलयावस्था एवं मोक्षावस्था में सत्य नहीं है। इन अवस्थाओं में भेद न रहकर एकमात्र अभेद ही हो जाता है। अतएव ये भेद को औपाधिक तथा अभेद को वास्तविक मानते हैं।

समीक्षा--

उक्त मत में कार्यरूप ब्रह्म ही जीव है, अतः उपाधि सम्बन्ध से जीव में होने वाले सुख दुःख परिणाम आदि का कार्यरूप ब्रह्म में भी प्राप्त होना स्वाभाविक है। यह स्थिति भेद को औपाधिक मानने पर ही आती है, जो शास्त्र सम्मत नहीं है। इस प्रकार (शास्त्र विरुद्ध होने से) यह मत (औपाधिक भेदाभेद) मान्य नहीं है।

केवल भेद (द्वैत मत)--

यह श्रीमध्वाचार्य आदि का सिद्धान्त हैं। आपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कहा है--'जीव समूह निश्चय ही अंश है। परमात्मा अंशी है। जीव परमात्मा का अंश होने से भिन्न है। ब्रह्म केवल निमित्त कारण है।' इस प्रकार श्रीमध्वाचार्य ने केवल भेद (द्वैत) सम्बन्ध स्वीकृत किया है।

समीक्षा--

केवल भेदवाद नैयायिकों तथा श्रीमध्वाचार्य आदिकों का

---

१. तत् कारणात्मना कार्यात्मना द्विरूपेणावस्थितम्। ब्रह्मैव हि कारणात्मना कार्यात्मना व्यवस्थितम्।　　(ब्र. सू. १/१/११ का भास्कर भाष्य)

सिद्धान्त है। इस मत में ब्रह्म को निमत्त कारण मात्र माना है। तत्त्व-सिद्धान्त बिन्दुकार ने इसमें होने वाली आपत्तियों का निर्देश किया है। वे इस प्रकार हैं:--

१-उक्त मत के अनुसार ब्रह्म सीमित व व्याप्य हो जाता है।

२-ब्रह्म की व्यापकता तथा नियन्तृता में व्याघात आता है।

३-'सर्व खल्विदं ब्रह्म' (छा. ३-१४-१) (यह सब कुछ ब्रह्म ही है) और -अहं ब्रह्म अस्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) इत्यादि श्रुति वचन केवल भेदवाद स्वीकृत करने पर बाधित हो जाते हैं।

४-सर्वज्ञत्व, सर्वनियन्तृत्व आदि ब्रह्मवर्ती समस्त धर्मो की हानि भी इससे होती है।

विशेष :--

केवल द्वैतवादी भेद सिद्धि के लिए नैयायिकों के समान ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण ही मानते हैं। ऐसा मानने पर 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्विजीयम्' (छा० ६/२/१), 'आत्मैवेदं सर्वम् '(छा० ७/२६/१)' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'(छा. ६/१४/१), 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते' (गी० १०/८), 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' (गी० ७/७) इत्यादि श्रुति स्मृति से प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वोपादानता, सर्वात्मकता में व्याघात आता है।

सेश्वर सांख्यवादियों का कहना है--''लोक में चेतन कुलाल आदि की ही निमित्त कारणता देखी जाती है, क्योंकि सृष्टि ईक्षा पूर्विका होती है, अतः ईक्षिता परमेश्वर जगत् का निमित्तकारण मात्र हो सकता है। उपादान कारण तो घटादि का मृदादि के समान

महदादि का तदधिष्ठित प्रधान ही होगा।'' यह कथन उचित नहीं है। प्रतिज्ञा और दृष्टान्त का सामञ्जस्य होने से ब्रह्म ही प्रकृति (उपादान कारण) और निमित्त कारण है। 'प्रकृतिश्चप्रतिज्ञा-दृष्टान्तानुपरोधात्' (ब्र. सू. १-४-२३) इसका वाक्यार्थ करते हुए श्रीनिम्बार्क भगवान् ने 'प्रकृति' शब्द से उपादान कारण एवं 'च' कार से निमित्त कारण परमात्मा को ही कहा है।[1]

प्रतिज्ञा और दृष्टान्त के सम्बन्ध में आपश्री ने छान्दोग्य उपनिषद् के एक प्रसङ्ग का संकेत किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखितानुसार है :--

अरुण का पौत्र उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु १२ वर्ष का हो गया था। पिता उद्दालक ने इसको कहा-'पुत्र! वेदाध्ययन के लिये गुरुकुल में निवास करो।' पिता की आज्ञा के अनुसार श्वेतकेतु ने १२ वर्ष तक गुरुकुल में रहकर साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन कर लिया। अब वह २४ वर्ष का हो गया। ''मैंने समस्त वेदों का अध्ययन कर लिया है। प्रज्ञा में मेरे समान अन्य कोई नहीं है.....'' आदि दर्प-पूर्ण भावों के साथ अनूचानमानी वह श्वेतकेतु अपने पिता के पास पहुँचा। पिता पुत्र को अपने समान विद्वान् देखकर प्रसन्न हुआ किन्तु उसके अभिमान की निवृत्ति करने हेतु पिता ने पूछा-''गुरुजी से तुमने कौनसी विशेष बात सीखी ?'' पुत्र ने प्रत्युत्तर दिया-''भगवन्! यज्ञादि समस्त कर्म विषयक साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेद का मैंने अध्ययन कर लिया है।'' पिता ने कहा--''कर्मादि विषयक

---

१. 'प्रकृति रूपोपादानकारणं चकारान्निमित्तकारणं च परमात्मैव।'

(वे० पा० सौ० १/४/२३ का भास्कर भाष्य)

वेदाभ्यास में वृथा परिश्रम किया है। केवल शास्त्र व आचार्य (श्रीगुरु चरण) के उपदेश से गम्य (ज्ञेय) उस आदेश को भी प्राप्त किया? जो पर ब्रह्म का ज्ञान कराता है। जिसके सुनने पर अश्रुत भी श्रुत हो जाता है, अमत भी मत हो जाता है, अविज्ञात भी विज्ञात हो जाता है।''[1] यह ही शास्त्र की प्रतिज्ञा है। इससे परमात्मा की उपादानता अभिव्यक्त होती है। उपादान के श्रवण, मनन आदि से उपादेय का ज्ञान स्वतः हो जाता है।

आगे श्वेतकेतु के पूछने पर उद्दालक ने उक्त प्रतिज्ञा वाक्य का आशय समझने के लिये दृष्टान्त देते हुए कहा-हे सौम्य! जिस प्रकार एक मृत्पिण्ड के (मृद् द्रव्य के रूप में) जान लेने पर सम्पूर्ण मृण्मय (मिट्टी के विकार घट, शराब आदि) का मृदात्मकतया ज्ञान हो जाता है तथा हे सौम्य! जिस प्रकार एक लोहमणि (स्वर्ण-पिण्ड) का स्वर्णत्व के रूप में ज्ञान होने पर उसके कार्यभूत समस्त कटक मुकुट आदि का भी ज्ञान हो जाता है। घट, शराब, कटक मुकुट आदि भी ज्ञान हो जाताहै। घट, शराब, कटक, मुकुट आदि जितने भी उपादेय कार्य हैं, वे अपने उपादान कारण (मृत्तिका अथवा लोहमणि आदि) से अपृथक् सिद्ध हैं। अर्थात् उपादान से भिन्न (पृथक्) नहीं हैं, अतः उपादान कारण के विज्ञान से उपादेय कार्यो का जान लेना सुलभ है। कारणभूत मृत्तिका ही स्वतन्त्र सत्ता का आश्रय है, घट, शराबादि कार्य नहीं। क्योंकि ये मिट्टी के बिना कहीं उपलब्ध नहीं होते, अतः उपादान कारण (स्वतन्त्र सत्ताश्रय) मृत्तिका

---

१. उत तमादेशमप्राक्ष्यः (छा० ६/१/२) येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मत्तमविज्ञात विज्ञातमिति। (छा० ६/१/३)

ही सत्य है।[1] इसी प्रकार आकाशादि प्रपञ्च जात ब्रह्म के उपादेय हैं, अतः ब्रह्मात्मक हैं। ये स्वतन्त्र सत्ता के अधिकरण नहीं हैं। अपने उपादान कारणभूत ब्रह्म से अपृथक् सिद्ध हैं।

उक्त प्रतिज्ञा व दृष्टान्त का सामञ्जस्य होने से जगत् की प्रकृति (उपादान कारण) और निमित्त कारण भी ब्रह्म ही है। इसी आशय से 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्' सूत्र का वाक्यार्थ करते हुए श्रीनिम्बार्क भगवान् ने लिखा है--

''उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवति'' इति प्रतिज्ञायाः, यथा सौम्येकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्'' इति दृष्टान्तस्य च सामञ्जस्यात्।

(वे० पा० सौ०)

उक्त विशेष समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल द्वैत मत शास्त्र व अनुभव से विपरीत होने के कारण सङ्गत नहीं है।

विशिष्टाद्वैत वाद--

''चित्, अचित् से विशिष्ट, निखिल हेय गुण (दोष) से

---

१. यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृणमयं विज्ञातं भवति, स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वलोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्॥ (छा० ६/१/४/५)

रहित, सार्वज्ञादि व सौशील्यादि समस्त कल्याण गुणों के आकर, श्रीपुरुषोत्तमाख्य पर ब्रह्म वेदान्त के प्रतिपाद्य है''-यह श्रीभाष्यकार भगवत्पाद श्रीरामनुजाचार्यजी का सिद्धान्त है।

चेतन (भोक्ता, जीव) व अचेतन (भोग्य जड़ पदार्थ जात) पर ब्रह्म (अन्तर्यामी होकर नियामक ईश्वर) के विशेषण भूत हैं। इन दोनों से विशिष्ट सार्वज्ञ आदि अचिन्त्य अपरिमित गुणों के समुद्र, जगत् के उदय (सृष्टि) विलय (संहार) आदि के अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म हैं।

''चेतन विशिष्टं चाचेतन विशिष्टं चेति विशिष्टे। तयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।'' इस व्युत्पत्ति से विशिष्टाद्वैत वाद में चेतन (जीवात्मा) और अचेतन (जड) वर्ग) भी ब्रह्म के ही प्रकार (विशेषण) भूत हैं। इनका ब्रह्म में विशेषण विशेष्य भाव अंशांशीभाव के रूप में होते हुए भी स्वाभाविक वैलक्षण्य दृष्टिगत होता है अतः इनका भेद स्वाभाविक है। वैलक्षण्य स्वभाव परक श्रुतियों का इनमें समन्वय हो जाता है तथा विशेषणों का विशेष्य पर्यन्त आश्रय लेकर अभेद श्रुतियों की प्रवृत्ति हो जाती है।

इस प्रकार चेतन, अचेतन और ईश्वर के स्वरूप तथा स्वभागवत भेद बताने वाले वाक्यों में जो कार्य कारण भाव एवं इसकी अभिन्नता के निर्देशक वचन हैं, उनमें परस्पर मतभेद प्रतीत होता है पर जड चेतन का सदा परमात्मा से शरीरात्म भाव है। शरीर भूत जड चेतन की कारणावस्था में नाम रूप विभाग रहित सूक्ष्म

दशा तथा कार्यावस्था में नाम रूप विभाग वाली स्थूल दशा बताने वाली श्रुतियों से उक्त मतभेद का परिहार हो जाता है।[1]

चित्, अचित् ब्रह्म स्वभावतः भिन्न हैं-यह श्रुति-सिद्ध है। ''ईश्वर आत्मा है। समस्त जड चेतन उसका शरीर है।'' ऐसा धर्म धर्मी बोधक श्रुतियों से समर्थित होता है। अन्य श्रुतियों में इनका जो कार्य कारण भाव और कार्य कारण अभेद बताया गया है-वह अविरुद्ध ही सिद्ध होता है।[2]

समीक्षा--

ग्रन्थकार ने उक्त विशिष्टाद्वैत मत को युक्ति से प्रकाशित तथा लक्षणादि का समन्वय न होने से केवल आपात रमणीय जैसा कहा है, क्योंकि शास्त्रों के ज्ञाता अन्य के व्यावर्तक को विशेषण कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार उन दोनों (चित् और अचित्) की विशेषणता-चिदचित् के अतिरिक्त किसी वस्तु की सत्ता न होने के कारण-चरितार्थ नहीं होती।

जिस प्रकार गोत्व, मनुष्यत्व, श्यामत्व आदि विशेषणों से

---

१. एवं चिदचिदीश्वराणां स्वभावभेदं स्वरूपभेदं च वदन्तीनां कार्यकारण भावं कार्यकारणयोरनन्यत्वं च वदन्तीनां सर्वासां श्रुतिनामविरोधः। चिदचितो परमात्मनश्च सर्वदा शरीरत्मभावं शरीर भूतयोः कारणदशायां नामरूप विभागानर्हसूक्ष्मदशापत्ति कार्यदशायां च तदर्ह स्थूलदशापत्तिं वदन्तीभिः श्रुतिभिरेव इति। (श्रीभाष्य ब्र० सू० १/१/१)

२. चिदचिदीश्वराणां पृथक् स्वभावतया तत्तच्छ्रुति सिद्धानां शरीरात्मभावेन प्रकार-प्रकारितया श्रुतिभिरेव प्रतिपन्नत्तया श्रुत्यन्तरेण कार्यकारणभाव प्रतिपादनं कार्यकारणयोरैक्य प्रतिपादनं च ह्यविरुद्धम्।

(श्रीभाष्य-ब्र० सू० १/१/१)

गवादि भिन्न महिषी आदि की व्यावृत्ति की जाती है, वैसे ही चित् और अचित् विशेषणों द्वारा किसकी व्यावृत्ति होगी? क्योंकि चित्, अचित् एवं ब्रह्म इन तीनों के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व ही नहीं हैं।

व्यावर्त्य वस्तु के अभाव में किसी की व्यावर्तकता सिद्ध नहीं होती। व्यावर्तकता अथवा विशेषणता एक ही अर्थ के बोधक दो शब्द हैं। चित् और अचित् को ब्रह्म का विशेषण कहने पर चिदचिद्भिन्न कौनसी वस्तु है, जो संसार में हो तथा ब्रह्म में नहीं हो, जिसकी व्यावृत्ति के लिए चित्, अचित् को विशेषण बनाया जावे। इस प्रकार जब तत्त्वत्रय के अतिरिक्त कोई वस्तु ही नहीं है, फिर ब्रह्म को विशिष्ट कैसे कह सकते है!

चित् अचित् और ब्रह्म-इन तीनों तत्त्वों का विभिन्न श्रुतियों ने किस प्रकार के सम्बन्ध की मुख्यता का निर्देश किया है? इसका विवेचन करते हुए श्रीरामानुजाचार्य चरण ने ''प्रकाशादिवत्तु नैवं परः'' (ब्र० सू० २-३-४५) के श्रीभाष्य में कहा है--

''जैसा जीव है, वैसा पर (ब्रह्म) नहीं है। जिस प्रकार प्रभा से प्रभावान् भिन्न है, उसी प्रकार प्रभा स्थानीय अंशभूत जीव से अंशी पर (ब्रह्म) भी अर्थान्तर (भिन्न) है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म में विशेषण विशेष्यकृत स्वभाव वैलक्षण्य को लेकर भेद निर्देश एवं पृथक् सिद्धि के अयोग्य विशेषणों की विशेष्यता का आश्रय लेकर अभेद निर्देश मुख्यतया उपपन्न होते हैं।[१]''

---

१. एवं जीव--परयोर्विशेषणविशेष्ययोरशांशित्वं स्वभावभेदश्चोपपद्यते । तदिदमुच्यते नैवं पर इति। यथा भूतो जीवः न तथा भूतः परः। यथैव हि प्रभायाः प्रभावानन्यथाभूत तथा प्रभास्थानीयात् स्वांशाज्जीवादंशी

इस प्रकार ब्रह्म के साथ जीव और जगत् के भेद व अभेद सम्बन्ध की मुख्यता को श्रुति सिद्ध मान कर भी विशिष्ट के ऐक्य (विशिष्टाद्वैत) का प्रतिपादन करने में इनको लज्जा नहीं आती? अतः लाघव (भेदाभेद) का परित्याग करके गौरव (विशिष्टाद्वैत) का आश्रय लेने के कारण विशिष्टाद्वैत वादियों ने अज्ञ जन वञ्चित कर दिये गये हैं।[२]

*

परोऽप्यर्थान्तर भूत इत्यर्थः। एवं जीव-परयोर्विशेषण विशेष्यत्वकृतं स्वभाव वैलक्षण्यमाश्रित्य भेदनिर्देशा प्रवर्तन्ते। अभेद निर्देशास्तु पृथक् सिद्ध्यनर्हविशेषणानां विशेष्य पर्यन्तत्वमाश्रित्य मुख्यत्वेनोपपद्यन्ते।

(श्रीभाष्य ब्र० सू० २/३/४५)

२. विशिष्टा द्वैत की सदोषता का विशेष ज्ञान करने के लिये 'निम्बार्क वेदान्त का संक्षिप्तसार' (उत्तरार्द्ध) पृ० सं० ८१ से १०० तक द्रष्टव्य है।

उपसंहार

इस प्रकार विभिन्न मतों के स्वरूप निरूपण एवं समीक्षा से यह स्पष्ट होगया है कि ब्रह्म के साथ चित् व अचित् का निश्चय से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है। अतः शास्त्र के अविरुद्ध इसका ही मुमुक्षु जन को सदा चिन्तन व मनन करना चाहिये।

यद्यपि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है तथा इसका अधिकांश साहित्य संस्कृत में ही है किन्तु वर्तमान युग में इसके ज्ञाता बहुत कम हैं, अतः सर्व साधारण वैष्णवों के हितार्थ प्राचीन संस्कृत साहित्य का हिन्दी रूपान्तर होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत "तत्त्व सिद्धान्त बिन्दु" का हिन्दी लेखन व सम्पादन इसी पावन भावना से पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्रीआचार्यचरण श्री श्रीजी महाराज के निर्देशानुसार किया गया है। पाठकजनों को इससे किञ्चिन्मात्र भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

ज्येष्ठ शु० २ शुक्रवार
संवत् २०४१ वि०
१ जून १९८४

विनीत-
रामगोपाल शास्त्री
जयपुर (राज०)

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

अथ श्रीमदनन्तरामदेव विरचितः

तत्त्व - सिद्धान्त - विन्दुः

मङ्गलाचरणम्

श्रीकृष्णं च तथा व्यासं निम्बादित्यं च भक्तितः ।।
प्रणम्य सर्व-वेदान्त-सारार्थः कथ्यते मया ।।१।।

अथ श्रीरामगोपाल शास्त्रिणाऽनूदितं

तत्त्व - ज्योतिः

मङ्गलाचरणम्

श्रीगोविन्दं गुरुं नत्वा बालानां हित-काम्यया ।
संगृह्य सारं भाषायां-तत्त्वज्योतिर्वितन्यते ।।

''तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दु'' के रचयिता वेदान्तकेशरी श्रीअनन्तरामदेव अपने ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु मङ्गल कामना के रूप में उपास्यदेव, ब्रह्म सूत्रकार श्रीव्यासदेव एवं सम्प्रदाय प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्यचरण को नमस्कार करके उद्दिष्ट वस्तु का प्रतिपादन करते हैं--''श्रीकृष्णम्'' इत्यादि।

अन्वयः- श्रीकृष्णं तथा च व्यासं निम्बादित्यं च भक्तितः प्रणम्य सर्ववेदान्तसारार्थः मया कथ्यते ।।१।।

तत्त्व-त्रय-निर्देशः

भोक्ता भोग्यं नियन्तेति तत्त्वं त्रिविधमेव हि ।।
चिदचिदीश्वराख्यं वै चतुर्थं नैव विद्यते ।।२ ।।

सम्बन्ध-समीक्षा

त्रयाणामत्र सम्बन्धो ज्ञातव्योऽस्ति मनीषिणा ।।
अत्यन्ताभेद एवास्ति भेद एवाथ केवलम् ।।३ ।।

भावार्थः-उपास्य देव, परब्रह्म स्वरूप श्रीराधाकृष्ण युगल, ब्रह्मसूत्रकार महर्षि श्रीव्यास तथा वेदान्त पारिजात सौरभ आदि के रचयिता, सम्प्रदाय प्रवर्तक श्रीसुदर्शन चक्रावतार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य को सभक्ति प्रणाम करके सम्पूर्ण वेदान्त का सारभूत अर्थ मेरे द्वारा कहा जाता है॥१॥

अन्वयः-वै (निश्चयेन) चिदचिदीश्वराख्यं भोक्ता भोग्यं नियन्ता इति त्रिविधमेव तत्त्वं (शास्त्रे अस्ति) हि (यतः) चतुर्थं नैव विद्यते॥२॥

भावार्थः-निश्चय से चित्, अचित् ईश्वर नाम के भोक्ता, भोग्य और नियन्ता ये तीन प्रकार के ही तत्त्व शास्त्र में हैं। इनके अतिरिक्त चौथा कोई भी तत्त्व नहीं है॥२॥

उक्त तीनों तत्त्वों का परस्पर कैसा सम्बन्ध है? इसका बोध कराने के लिए ग्रन्थकार स्वाभाविक द्वैताद्वैत सम्बन्ध की स्थापना की दृष्टि से सर्वप्रथम अन्य सम्बन्धों की समीक्षा, उत्थापन व खण्डन करते हैं-''त्रयाणाम्'' इत्यादि।

अन्वयः-अत्र (वेदान्त शास्त्रे) मनीषिणा त्रयाणां (भोक्तृ-भोग्य-नियन्तृणां) सम्बन्धः ''अत्यन्ताभेद एवास्ति, अथ केवलः भेद एव अस्ति''-इति ज्ञातव्यः अस्ति॥३॥

अत्यन्ताभेद सम्बन्ध खण्डनम्

आद्ये गुणस्वभावस्य साङ्कर्य्यं स्यात् त्रयस्य हि ।।
बन्ध-मोक्ष-व्यवस्थाया बाधः शास्त्रस्य वै भवेत् ।।४ ।।

भावार्थः-इस वेदान्त शास्त्र में विद्वान् को भोक्ता, भोग्य और नियन्ता-इन तीनों तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध ''अत्यन्त अभेद है अथवा केवल भेद है''-यह जानना चाहिये ॥३॥

अन्वयः-आद्ये (अत्यन्ताभेदसम्बन्धे स्वीकृते सति) हि (निश्चयेन) त्रयस्य (चिदचिदीश्वरात्मक-तत्त्वत्रयस्य) गुणस्वभावस्य साङ्कर्य्यं स्यात् तेन वै (निश्चयेन) शास्त्रस्य बन्ध-मोक्ष-व्यवस्थायाः बाधः भवेत् ॥४॥

भावार्थः-यदि आद्य (अत्यन्ताभेदसम्बन्ध) स्वीकार करते हैं तो निश्चय से भोक्ता (जीव) में भोग्य (अचेतन प्रकृति) के गुण (सत्व, रज, तम) और स्वभाव (विकारादि) तथा नियन्ता (ईश्वर) के धर्म (सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि) का साङ्कर्य्य हो जावेगा। भोग्य (अचेतन प्रकृति) में भोक्ता (जीव) के गुण स्वभाव (चेतनता, ज्ञानस्वरूपता आदि) एवं नियन्ता (ईश्वर) के सर्वज्ञता, शास्त्रयोनिता आदि गुणों का संम्मिश्रण हो जावेगा। इसी प्रकार नियन्ता (ईश्वर) में भी भोक्ता (जीव) व भोग्य (अचेतन प्रकृति) के गुण-स्वभाव का मिश्रण हो जावेगा। इससे शास्त्र प्रतिपादित बन्ध-मोक्ष-व्यवस्था लुप्त हो जावेगा क्योंकि जब भेद ही नहीं है और तीनों तत्त्वों के विभिन्न गुणस्वभाव आपस में एक दूसरे में संक्रान्त होते हैं, फिर किसका बन्धन होगा? बिना बन्धन हुए मोक्ष का भी कोई प्रसङ्ग नहीं आयेगा। ऐसी स्थिति में शास्त्र द्वारा प्रतिपादित जीव की

औपाधिक-भेदाभेद-सम्बन्ध-खण्डनम्

अन्ये त्वौपाधिकं भेदमभेदं वास्तवं विदुः ।।
तेषामुपाधिसम्बन्धाद्दोषा ब्रह्मणि प्राप्नुयुः ।।५ ।।
सुख-दुःखादयश्चैव परिणामादयस्तथा ।।
अतस्तेषां मतं विज्ञैर्नादर्तव्यं शुभेप्सुभिः ।।६ ।।

बन्धार्हता व मोक्षार्हता की व्यवस्था बाधित हो जायेगी, अतः अत्यन्त अभेद (अद्वैत) सम्बन्ध स्वीकार करना उचित नहीं है।।।४।।

अत्यन्त अभेद वादी का खण्डन करके वास्तव में अभेद व औपाधिक भेदवादी श्रीभास्कराचार्यजी आदि का (औपाधिक भेदा-भेद सम्बन्ध का) भी खण्डन करते हैं-'अन्ये तु' इत्यादि।

अन्वयः-अन्ये (औपाधिक भेदाभेदवादिनः तु (पुनः) भेदम् औपाधिकम् अभेदं वास्तवं विदुः, तेषां मते उपाधिसम्बन्धात् ब्रह्मणि सुखदुःखादयः तथा परिणामादयः दोषाः प्राप्नुयुः, अतः तेषां मतं शुभेप्सुभिः विज्ञैः न आदर्तव्यम्।।५-६।।

भावार्थः-अन्य औपाधिक भेदाभेदवादी श्रीभास्कराचार्य आदि तो भेद को औपाधिक तथा अभेद को वास्तविक मानते हैं। उनके मत में उपाधि के सम्बन्ध से ब्रह्म में भी (कार्यावस्था में) सुख दुःख आदि तथा परिणाम आदि दोष प्राप्त होते हैं, अतः मुमुक्षु बुधजनों द्वारा यह औपाधिक भेदाभेद मत आदरणीय नहीं है।।५-६।।

श्लोक सं० ३ में उत्थापित केवल भेद सम्बन्ध का खण्डन करते हैं--'केवले भेदवादे' इत्यादि।

केवल भेद-सम्बन्ध-खण्डनम्

केवले भेदवादे तु ब्रह्मणः परिच्छिन्नता ।।
भवेद् वै व्यापकत्वं च नियन्तृत्वं च नो भवेत् ।।७।।
सर्वं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मास्मीत्यादि वचनं तथा ।।
बाध्येतैव तथा सर्व-धर्म-हानिश्च सञ्जताम् ।।८।।

अन्वयः- केवले भेदवादे तु ब्रह्मणः परिच्छिन्नता भवेत्, वै (निश्चयेन) च (पुनः) (ब्रह्मणः) व्यापकत्वं नियन्तृत्वं च नो (न) भवेत् ।।७।।

तथा (भेदवादे स्वीकृते सति) 'सर्वं ब्रह्म इति' (सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति) एवं 'अहं ब्रह्म अस्मि' इत्यादि वचनं बाध्येत, तथा च सर्वधर्महानिः सञ्जताम् ।।८।।

भावार्थ-केवल भेदवादे (द्वैत दर्शन) में तो ब्रह्म की परिच्छिन्नता (व्यापकता का अभाव) हो जाती है। फिर निश्चय से ब्रह्म की व्यापकता और नियन्तृता नहीं होती।।७।।

भेदवाद स्वीकृत करने पर ''सर्वं खलु इदं ब्रह्म'' (छा० ६/१४/१) (''यह सब कुछ ब्रह्म है'') और ''अहं ब्रह्म अस्मि'' (मैं ब्रह्म हूँ) इत्यादि श्रुति वचन बाधित हो जाते हैं। इसी प्रकार सर्वज्ञत्व, सर्वनियन्तृत्व आदि ब्रह्मवर्ती समस्त धर्मों की हानि भी संभावित होगी (अतः यह मत मान्य नहीं है)।।८।।

अब स्वसिद्धान्त स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध का निरूपण करते हैं- ''तस्मात्तु'' इत्यादि।

स्वाभाविक-भेदाभेद-सम्बन्ध निरूपणम्

तस्मात्तु चिदचिद्ब्रह्मतत्त्वानां श्रुतिभिः पृथक् ।।
गुण-शक्ति-स्वभावैर्हि स्वरूपस्य विवेचनात् ।।९ ।।
भेद एव स्वरूपेण त्रयाणां प्रतिपद्यते ।।
अपि च चिदचिद्वस्तु सर्वं ब्रह्मात्मकं खलु ।।१० ।।
ब्रह्माधीनं हि तद्व्याप्यं शास्त्रेणैवेति निश्चितम् ।।
ब्रह्माभिन्नमतः प्रोक्तं श्रुतिसूत्रार्थ-दर्शकैः ।।११ ।।

अन्वयः-तस्मात् (पूर्वोक्ताद्धेतोः) तु (निश्चयेन) त्रयाणां चिदचिद्ब्रह्मतत्त्वानां गुण-शक्ति स्वभावैः स्वरूपस्य विवेचनात् स्वरूपेण श्रुतिभिः पृथक् भेद एव हि (निश्चयेन) प्रतिपद्यते॥

अपि च सर्वं चिदचिद् वस्तु खलु (निश्चयेन) ब्रह्मात्मकं (भवति) हिं (यतः) (सर्वं वस्तु) ब्रह्माधीनं तदव्याप्यं (ब्रह्मव्याप्यं) इति शास्त्रेण एव निश्चितम्, अतः (अस्मात्कारणात्) श्रुतिसूत्रार्थ-दर्शकैः (आचार्य्यवर्य्यैः) (सर्वं जगत्) ब्रह्माभिन्नं प्रोक्तम्।

भावार्थः-इस प्रकार (पूर्वोक्त हेतुओं से) न केवल अभेद (अद्वैत) शास्त्र संमत है और न औपाधिक भेदाभेद तथा न केवल भेद (द्वैत) ही युक्ति-युक्त है, अतः निश्चय से चित्, अचित् और ब्रह्म'-इन तीनों तत्त्वों के पृथक्-पृथक् गुण, शक्ति व स्वभावों के कारण पृथक्-पृथक् स्वरूप का विवेचन करने से श्रुतियों द्वारा इनका स्वरूपतः (वास्तविक) भेद सिद्ध होता है एवं सम्पूर्ण चिद् अचिद् वस्तु निश्चय से ब्रह्मात्मक है-इस हेतु से ये ब्रह्माधीन तथा ब्रह्म से व्याप्य हैं-यह शास्त्र (श्रुति, स्मृति आदि) द्वारा निश्चित है, अतः

तस्मात् स्वाभाविको भेदाभेद एव द्वयोस्तयोः ।।
ब्रह्मणा सह मन्तव्यः सूत्रकारमतानुगैः ।।१२।।

निष्कर्षः

अभेदः केवलो भ्रान्तिस्तथा भेदोऽपि केवलः ।।
श्रुति-स्मृतिविरुद्धत्वाद्विवेकिनामसम्मतः ।।१३।।
इदमेव मतं श्रौतमविरुद्धं सनातनम् ।।

श्रुति व सूत्रों का अर्थ (भाष्य) करने वाले आचार्यचरणों द्वारा सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म से अभिन्न भी कहा गया है। यह अभेद भी वास्तविक ही है। (इसलिये स्वाभाविक (वास्तविक) भेदाभेद सम्बन्ध ही शास्त्र संमत है) ।।९-११।।

अन्वयः-तस्मात् (कारणात्) सूत्रकारमतानुगैः (जनैः) तयोः (चिदचितोः-जीवमाययोः) द्वयोः ब्रह्मणा सह स्वाभाविकः भेदाभेद एव (सम्बन्धः) मन्तव्यः ।।१२।।

भावार्थः-इस कारण से ब्रह्मसूत्रकार (श्रीवेदव्यास) के मतानुयायी पुरुषों को चित् (जीव) तथा अचित् (अचेतन, माया) का ब्रह्म के साथ स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध ही मानना चाहिये ।।१२

अन्वयः-श्रुति-स्मृति-विरुद्धत्वात् केवलः अभेदः तथा केवलः भेदः अपि भ्रान्तिः, (अत एव) विवेकिनाम् (सारासार विवेचन कुशलानाम्) असम्मतः ।।१३।।

इदम् (स्वाभाविक भेदाभेदम्) एव अविरुद्धम्, (अत एव) सनातनम् श्रौतं मतम् ।।

भावार्थः-सर्वाल्लोकानीशते ईशनीभिः (श्वे०३/१) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि-

विशिष्टाद्वैतवादः

निधायान्तर्बहिष्केचिद्विशिष्टाद्वैतमादिशन् ।।१४ ।।
ते तु चिदचिती ब्रह्म-शरीरत्वाद्विशेषणे ।।
मत्वा तत्स्थूल-सूक्ष्मायां विशिष्टं ब्रह्मचक्षते ।।१५ ।।
कारत्वं च कार्यत्वं भजते तच्छरीरि तत् ।।
अखिल-शब्द वाच्यंत्वं भजते चेति मन्यते ।।१६ ।।

संविशन्ति (तै० ३/१/१), अहं सर्वस्य प्रभवो मतः सर्वं प्रवर्तते (गी० १०-८) इत्यादि भेदबोधक श्रुति व स्मृतियों के विरुद्ध होने से केवल अभेद भ्रान्ति मात्र है तथा 'सदेव सौम्येंदमग्र आसीदेकमेवा-द्वितीयम्' (छा.६-२-१), 'आत्मा वा इदमेकमासीत्' (तै.२-१) 'तत्त्वमसि' (छा० ६-१४-३), 'मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव' (गी० ७-७) इत्यादि अभेद-बोधक श्रुति-स्मृति के विरुद्ध होने से केवल भेदवाद भी भ्रान्ति है, अतः ये तीनों मत सार व असार की विवेचना करने में कुशल विद्वानों के संमत नहीं है ॥१३॥

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक भेदाभेद ही अविरोधी मत है, अतः यह सनातन (नित्य) एवं श्रुति-प्रतिपादित सिद्धान्त है॥

विशिष्टाद्वैतवाद का भी पूर्व पक्ष के रूप में उत्थापन करते हुए इसके स्वरूप का निरूपण करते हैं-''निधाय'' इत्यादि।

अन्वयः-केचित् (जनाः) अन्तः बहिः च ब्रह्म निधाय विशिःष्टाद्वैतं (मतम्) आदिशन्॥१४॥

ते (विशिष्टाद्वैतवादिनः) तु ब्रह्मशरीरत्वात् चिदचिती विशेषणे मत्वा स्थूल-सूक्ष्माभ्यां विशिष्टं तद् ब्रह्म चक्षते॥१५॥

तच्छरीरि (चिदचिती शरीरे यस्य) तत् (ब्रह्म) कारणत्वं

विशिष्टाद्वैतवाद-समीक्षा

विशिष्टाद्वैतमेतत्तु मतं युक्त्या प्रकाशितम् ।।
आपात-रमणीयं वै लक्षणाद्यसमन्वयात् ।।१७ ।।

कार्यत्वं च भजते, च (पुनः) अखिलशब्दवाच्यत्वं भजते, इति तैः (विशिष्टाद्वैत'वादिभिः) मन्यते ॥१६॥

भावार्थः-कोई विद्वान् ब्रह्म को भीतर व बाहर जान कर 'विशिष्टाद्वैत' मत का प्रतिपादन करते हैं॥१४॥

वे (विशिष्टाद्वैतवादी) तो ब्रह्म का'शरीर होने से चित् (जीव) और अचित् (जड़) को विशेषण मानकर उस स्थूल (जड़माया) तथा सूक्ष्म (जीव) से विशिष्ट (युक्त) ब्रह्म को कहते हैं॥१५॥

चित् (जीव) और अचित् (प्रकृति) जिसका शरीर है, वह ब्रह्म कारणावस्था तथा कार्यावस्था को प्राप्त होता है एवं समस्त शब्दों की वाच्यता को भी प्राप्त होता है-ऐसा विशिष्टाद्वैतवादियों द्वारा माना जाता है॥१६॥

लक्षण आदि का समन्वय न होने से उक्त विशिष्टाद्वैतवाद की समीक्षा करते हुये कहते हैं- 'विशिष्टाद्वैतमेतत्तु' इत्यादि।

अन्वयः-लक्षणाद्यसमन्वयात् (हेतोः) वै (निश्चयेन) एतत् (पूर्वोक्तम्) विशिष्टाद्वैतम्, मतं तु युक्त्या प्रकाशितम्, (अतः) आपातरमणीयम् (अस्ति)॥१७॥

भावार्थः-लक्षण आदि का समुचित समन्वय न होने के कारण निश्चय से यह (पूर्वोक्त) विशिष्टाद्वैत मत तो युक्ति से प्रकाशित किया गया है, अतः आपात रमणीय (देखने मात्र में अच्छा है॥१७॥

व्यावर्तकत्वमन्यस्य विशेषणत्वमीरितम् ।।
शास्त्रविद्भिर्द्वयोस्तच्च तयोर्नैव तु युज्यते ।।१८ ।।
यथा गोत्व-मनुष्यत्व-श्यामत्वादि-विशेषणैः ।।
इतरस्य महिष्यादेर्व्यावृत्तिः क्रियते बुधैः ।।१९ ।।
चिदचिद्भ्यां तथा कस्य व्यावृत्तिः क्रियतेऽत्र भोः ।।
चिदद्ब्रह्मणस्तत्त्वं त्रयादन्यन्न विद्यते ।।२० ।।

अन्वयः-शास्त्रविद्भिः अन्यस्य (वस्तुनः) व्यावर्तकत्वं विशेषणत्वम् ईरितम् (कथितम्) च (पुनः) तयोः द्वयोः (चिदचितोः) तत् (विशेषणत्वम्) तु नैव युज्यते॥१८॥

भावार्थः-शास्त्रों के ज्ञाता अन्य वस्तु के व्यावर्तक को विशेषण कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार उन दोनों (चित् और अचित्) की विशेषणता (चिदचित् के अतिरिक्त किसी वस्तु की सत्ता न होने के कारण) युक्त नहीं है॥१८॥

अन्वयः-बुधैः यथा गोत्व-मनुष्यत्व-श्यामत्वादि विशेषणैः इतरस्य महिष्यादेः व्यावृत्तिः क्रियते, तथा अत्र भोः चिदचिद्भ्यां कस्य व्यावृत्तिः क्रियते ? (यतः) त्रयात् चिदचिद्ब्रह्मणः अन्यत् तत्त्वं न विद्यते॥१९-२०॥

भावार्थः-विद्वान् पुरुष जिस प्रकार गोत्व, मनुष्यत्व, श्यामत्व आदि विशेषणों से तद्भिन्न महिषी आदि की व्यावृत्ति करते हैं, वैसे यहाँ चित् और अचित् विशेषणों द्वारा किसकी व्यावृत्ति की जाती है? क्योंकि चित्, अचित् एवं ब्रह्म-इन तीनों के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व ही नहीं है॥१९-२०॥

व्यावर्त्त्य-वस्त्वभावे तु न व्यावर्तकता तयोः ।।
अव्यावर्त्तकतायां तु न विशेषणता तयोः ।।२१ ।।
तदभावे विशिष्टं तु को ब्रूयाद् ब्रह्म पण्डितः ।।
किञ्च चिदचितो र्भेदोभेदो वै ब्रह्मणा सह ।।२२ ।।
मत्वा पुनर्विशिष्टैक्यं त्रपा वक्तुं न जायते ।।
अतोऽज्ञा वञ्चिता लोका विशिष्टाद्वैतवादिभिः ।।२३ ।।

अन्वयः-व्यावर्त्त्य-वस्त्वभावे तु तयोः (चिदचितोः व्यावर्त्तकता न (भवति)। तु (पुनः) अव्यावर्त्तकतायां (सत्यां) तयोः (चिदचितोः) विशेषणता (अपि) न (भवति) ॥२१॥

भावार्थः-व्यावर्त्त्य वस्तु के अभाव में उन दोनों (चित् और अचित्) की व्यावर्त्तकता नहीं होती। फिर व्यावर्त्तकता के अभाव में उन (चित्, अचित्) की विशेषणता भी नहीं बन पाती॥२१॥

अन्वयः-तदभावे तु कः पण्डितः ब्रह्म विशिष्टं ब्रूयात्? किञ्च ब्रह्मणा सह चिदचितोः वै (निश्चयेन) भेदाभेदः (अस्ति)॥२२॥

भावार्थः-विशेषणता के अभाव में तो कौन पण्डित ब्रह्म को चिदचिद्विशिष्ट कहेगा? और ''क्या? ब्रह्म के साथ चित् तथा अचित् का निश्चय से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध ही है'' ॥२२॥

अन्वयः-इति मत्वा पुनः विशिष्टैक्यं वक्तुं (विशिष्टाद्वैत-वादिनां) त्रपा (लज्जा) न जायते? अतः विशिष्टाद्वैतवादिभिः अज्ञा लोका वञ्चिताः ॥२३॥

भावार्थः-[1]''जीव और पर (ब्रह्म) में विशेषणविशेष्य कृत

१-ब्रह्मसूत्र-अंशाधिकरण-'अपि स्मर्यते' इस सूत्र (२/३/४४) का श्रीभाष्य।

सिद्धान्तः स्वभाविको भेदाभेदः

तस्मात् स्वाभाविको भेदाभेदो हि ब्रह्मणा तयोः ।।
इति शास्त्राविरोधार्थः सदा ध्येयो मुमुक्षुभिः ।।२४ ।।

स्वभाव वैलक्षण्य को लेकर भेदनिर्देश तथा पृथक् सिद्धि के अयोग्य विशेषणों की विशेष्यता का आश्रय लेकर अभेद निर्देश मुख्यतया उपपन्न होते हैं''-इस प्रकार ब्रह्म (नियन्ता) के साथ जीव (भोक्ता) और जगत् (भोग्य) के भेद व अभेद की मुख्यता को श्रुतिसिद्ध मानकर भी चिदचिद्विशिष्ट की एकता का प्रतिपादन करने में विशिष्टाद्वैतवादियों को लज्जा नहीं आती? अतः (लाघव (स्वाभाविक भेदाभेद) का परित्याग करके गौरव (विशिष्टाद्वैत) का आश्रय लेने के कारण) विशिष्टाद्वैत वादियों द्वारा अज्ञ जन वञ्चित कर दिये गये हैं॥२३॥

अन्वयः-तस्मात् ब्रह्मणा (सह) तयोः (चिदचितोः) हि (निश्चयेन) स्वाभाविकः भेदाभेदः (सम्बन्धः) इति (पूर्वोक्त प्रकारेण) शास्त्राविरोधार्थः मुमुक्षुभिः सदा ध्येयः (चिन्तनीयः)॥२४॥

भावार्थः-इसलिये (पूर्व में कारिका सं० ९ से १३ तक) में किये गये ''स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध-निरूपण'' एवं 'निष्कर्ष' के अनुसार) ब्रह्म के साथ चित् व अचित् का निश्चय से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है, अतः शास्त्र के अविरुद्ध इस मत का मुमुक्षुजन को सदा चिन्तन करना चाहिये॥२४॥

अन्त में ग्रन्थ का नाम-निर्देश करते हुए अनुबन्ध-चतुष्टय का प्रतिपादन करते हैं- 'तत्त्व-सिद्धान्त-विन्दु' इत्यादि।

उपसंहारेऽनुबन्ध-चतुष्टयम्

तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुर्वै निम्बादित्यानुयायिनाम् ।।
जिज्ञासूनां हितायैष दर्शितोऽनुग्रहाद्धरेः ।।२५ ।।

इति श्रीभगवन्निम्बार्क-महामुनीन्द्र-सिद्धान्त-निर्वाहकाचार्य-श्री-मत्स्वभूरामदेवाचार्यचरण वंशज-विपश्चिद्वर-श्रीमदाचार्या-नन्तराम-विरचितः तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुः समाप्तः ।

अन्वयः-निम्बादित्यानुयायिनां जिज्ञासूनां वै (निश्चयेन) हिताय: हरेः अनुग्रहात् एषः तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दुः दर्शितः ॥२५॥

भावार्थः-अनादि-वैदिक-सम्प्रदाय-प्रवर्तक श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य के अनुगामी जिज्ञासुओं के निश्चयपूर्वक हित-सम्पादन के लिये श्रीहरि (श्रीराधाकृष्ण युगल) के अनुग्रह से यह ''तत्त्व-सिद्धान्त-बिन्दु'' नामक प्रबन्ध (संक्षिप्त रीति से) प्रदर्शित हुआ॥२५॥

अनुबन्ध-चतुष्टयम्-मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रस्तुत विषय का जिज्ञासु अधिकारी है। सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, स्वाभाविक अचिन्त्य अनन्त शक्तियों के आधार, दोषों से अस्पृष्ट चित् और अचित् के स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध के आश्रय ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, प्रकृति, परमाणु, काल, कर्म, स्वभाव आदि के नियन्ता श्रीहरि श्रीराधाकृष्ण युगल इसके विषय हैं, जिनकी कृपा से यह ग्रन्थ प्रदर्शित हुआ है। विषय विषयी भाव लक्षण सम्बन्ध है तथा यहाँ नियन्तृ-तत्त्व की आश्रयता प्रतिपाद्य विषय होने से ग्रन्थ के साथ प्रतिपाद्य-प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति', ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः' आदि श्रुति-

---

निर्दिष्ट-पद्धति के अनुसार गुरुशुश्रूषा आदि से प्राप्त तत्त्व-ज्ञान एवं भगवत्कृपा से होने वाला भगवद्भावापत्ति लक्षण मोक्ष इसका प्रयोजन है।

इति श्रीभगवन्निम्बार्क-महामुनीन्द्र-सिद्धांत-निर्वाहकाचार्य-
श्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्य-परम्परानुगत-श्रीचतुर चिन्तामणि
देवाचार्य परम्परान्तर्गत-महत्तम-श्रीगोविन्ददास-
शास्त्रि चरणाश्रितेन रामगोपालशास्त्रिणा-
ऽनुदिता सान्वय-भावार्थ-प्रकाशिका
'तत्त्वज्योति' रित्याख्या टीका
समाप्ता।